॥ ॐ ॥

ईशावास्यम्

वाजसनेयीसंहितोपनिषद् की भाषा टीका

सरल मध्यदेशीय भाषामें कोलाख्य नगरनिवा-
सी पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मणने
पण्डित पौराणिक महाराज वैकुण्ठ-
नाथजी की सहायता से
अनुवाद किया

तीसरी बार

लखनऊ

मुन्शी नवलकिशोर (सी. आई. ई) के छापेख़ाने में छपी

जौलाई सन् १९०५ ई० ॥

कापीराइट महफ़ूज़ है बहक़ इस छापेख़ाने के ॥

ॐ

एकमेवाद्वितीयम् ॥

नमो याज्ञवल्क्याय ब्रह्मविद्याप्रदर्शकाय ॥

विज्ञापन ॥

सर्व सुज्ञ सज्जन विवेकविचारशील पाठकजनों को विदित हो कि इस कलिकाल महाराज के राजशासन में विशेष करके इस भारतवर्षकी प्रजा प्रायः प्रज्ञाहीन होतीहै इसही कारण से उनको वेदशास्त्रों का अध्ययन अरु तिनका अर्थज्ञान यथार्थ होता नहीं अरु तिसके न होनेसे धर्म अधर्म स्वार्थ परमार्थ लोक परलोक शुभ अशुभ कर्त्तव्य अकर्त्तव्य आदिकोंका विवेक किञ्चिन्मात्र भी होता नहीं तिसके न होनेसे अज्ञानवशभये विषय वासना कर ताड़ित चित्त शिश्नोदर परायण पशुवत् पञ्च विषयात्मक जगदारण्यके सम्मुखही धावते हैं अरु जन्म जन्मान्तररूपी गर्त्तमें जो कि काम क्रोध लोभ मोह राग द्वेष रोग ताप योग वियोग हानि लाभ जन्म मरणादि अनेक अनर्थरूप आवरणसे वेष्टित हैं पतनभावको पाय अनिवार्य दुःखोंको प्राप्त होतेहैं। तथाच।"गर्त्तमिवपतन्ति"। बृ०उ०अ० ६ केतृतीयज्योतिर्ब्राह्मण बिषे ऐसी सहस्रावधि प्रजा में कोई एक वेदशास्त्र करके प्रतिपाद्य जे अपराविद्या आश्रित अतिगहन कर्ममार्ग।"गहना कर्मणोगतिः"। तिसबिषे प्रायः सकामतासे प्रवृत्तहोते हैं परन्तु तिसके कर्त्तव्यविधि फल तात्पर्यको जानते नहीं केवल वासनाके वशभये अपने मनकी युक्ति अनुसार आचरण करतेहैं। अथवा नानाप्रकारके मतवादी जे वेदबाह्य मतके चलानेवाले हुयेहैं तिनके मतमदसे तिलकादि बाह्य मुद्राको ही पुरुषार्थ

मानके मदोन्मत्त फिरते हैं। इस प्रकार के सहस्रावधि मनुष्यों में कोई एक बिरला विषयों से वैराग्यवान् परमसावधान आत्म-जिज्ञासु होताहै परन्तु पूर्वसंस्कारकी किंचित् मलिनतासे प्रज्ञा की मन्दताकरके वेदशास्त्रों का यथार्थ अध्ययन विचार अभ्यास बनता नहीं अरु सतयुगादिवत् ब्रह्मचर्य्यादि साधनपूर्वक वेदाध्ययन इस कलिराज महाराज के राजशासन में प्रायः बने नहीं क्योंकि इसकाल में मनुष्योंके आयुः बल वीर्य प्रज्ञाआदि अति अल्पहोतेहैं अरु बाल्यावस्थासेही अन्न वस्त्रादिकों के अर्थ चिन्ता युक्त व्यावृत्तचित्तहोताहै एतदर्थ मन्दअधिकारी जो संस्कृतविद्या के संस्काररहित वैराग्यशील शान्तात्मा आत्मजिज्ञासु हैं तिनके विचारार्थ तादृशही शास्त्रविद्यारहित अतिअल्पज्ञ कोलाख्य नगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर नागरब्राह्मणने केवल अपने परमदयालु महात्मा ब्रह्मवेत्ता श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वतीजी गुरुमहाराज के पादपद्मरज की कृपासे अरु शास्त्रज्ञपण्डितों की सहायता से ईशादि उपनिषदोंकी भाषाटीकाकरनेका संकल्पकर ईश केन कठ इन तीन उपनिषदों की टीका किंचित् श्रीशंकराचार्य के भाष्यार्थानुसार किया परन्तु स्वसमीप में द्रव्याभावके कारण उनकामुद्रितहोय लोकोपकारमें प्रकाशितहोना दुःसाध्य जान अन्य उपनिषदोंकी टीका करने से चित्त उपरामभया परन्तु सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमात्माने इसमेरे शिवसंकल्पकी सिद्धता के अर्थ जिलअ़ अलीगढ़के अतरौलीग्रामनिवासी विवेकी आत्मनिष्ठ लालाश्यामलालजी कायस्थके अन्तःकरणमें श्रद्धा उत्पन्न कर उनकेपत्रद्वारा महान् उत्तमकारी पुस्तकको श्रीमती धर्मात्मा ठकुरानी महताबकुँवरि रईस कोटिला परगनह फ़ीरोज़ाबाद जिलअ़ आगरा के नेत्रगोचरकराया तब उस धर्मात्मा देवी ने अपने कार्य्याध्यक्ष कुँवर एदलसिंहजी की सम्मति से ईश अरु केन इन दो उपनिषदों की इस टीका को मुद्रित कराय प्रकाशितकिया। अब इसही टीकाको बहुत शुद्धकराय श्रीमान

परमधार्मिक मुंशीनवलकिशोरजी साहब ने अपने लक्ष्मणपुर के महायन्त्रालय में मुद्रितकराय सर्वलोकोपकारार्थ प्रकाशित किया सो–

[अस्तु]

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ईशावास्योपनिषद् ॥

भाषानुवाद सहित

ॐ ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥

पदान्वयः ॥

यत् किञ्च जगत्यां जगत् इदं सर्वं ईशा वास्यं तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा कस्य स्वित् धनं मा गृधः १ ॥

पदार्थ ॥

जो कुछ जगत्विषे जगत् यह सर्व ईश्वरकरके आच्छादित है । तिसते त्यागकरके रक्षाकरो किसीके भी धनकी मत आकांक्षा करो १ ॥

भावार्थ ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य ! जो १। कुछ २। जगत्विषे ३ जगत् भावहै ४। अर्थात् पृथिवीआदि लोकलोकान्तर जो जगत् है तिस विषे जो कुछ नामरूपात्मक जगद्भावहै। यह ५। अर्थात् यावत् इन्द्रिय मन बुद्ध्यादि करके स्थूल सूक्ष्म अनुभव में आवता है तावत् । सर्व ६। परमेश्वर परमात्मा करके ७। आच्छादित है ८। अर्थात् जो चराचर का आत्मा सर्वान्तर होत सन्ते सर्व सम्बन्ध रहित आकाशवत् सदाशुद्ध एकरस ज्ञानस्वरूप है सोई परमेश्वर परमात्मा है तिस करके सर्व चराचर जगत् आच्छादित है अर्थात् अनुभव विषे स्थित है सो अनुभव यह अपुन जो आत्मा है सोई परमात्मा है क्यों कि प्राणमनादि सर्वके अवान्तर सर्वका अनुभवीहै ताते आत्माहै। "*आत्मासर्वान्तर" ।अरु सोई आत्मा प्राण मन बुद्धिआदि किसीका भी विषय नहीं ताते परमात्मा है । इस प्रकार परमात्मा से अभिन्न आत्मरूप जे अपुन

* बृ० उ० अ० ३ के अन्तर्यामी ब्रा० विषे ॥

सोई जगत्रूप हैं क्योंकि यावत् जगत् है तावत् सर्व अपने अनुभवविषे स्थित है अर्थ यह कि अपना अनुभवही जगत्रूप हो भासता है ताते जगत् अनुभवरूप है सो अनुभव आत्मा से इतर नहीं 'जैसे अग्निसे दाहकता भिन्न नहीं' अरु आत्मा परमात्मा से इतर नहीं क्योंकि परमात्माने अपनी इच्छा से सर्व जगत् रूप होय तिस विषे आत्म (अन्तर्यामी) रूपसे आपही प्रवेश किया है तथाच।"*तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्"। ताते वास्तव करके परमात्मा आत्मा अरु जगत् अभेदरूपही हैं तथाच।"†सर्व्वं खल्विदम्ब्रह्म"।"‡अयमात्माब्रह्म"।"!पुरुषएवेदंसर्व्वं"।"×वासुदेवःसर्वमिति"। इस प्रकार अनेक श्रुति स्मृति आदिकों के प्रमाण से यह सर्व चराचर जगत् सत्य परमात्मज्ञान करके आच्छादितहै सो कैसाहै जगत् जो जगत्त्वकरके असत्य अरु अधिष्ठानसत्ता करके सत्यरूप है 'जैसे मृत्तिका बिषे घट सो घटत्व करके वाचारंभणमात्र असत्य है, तैसेही सर्वाधिष्ठान आत्मा बिषे सम्पूर्ण नामरूपात्मक जगत् अविद्या करके कल्पित ताते मिथ्याहै ऐसे कल्पित नामरूपात्मक जगत्बिषे जो सत्यप्रतीति भाव तिसको सत्य परमात्मज्ञान से ६। त्यागकरके १०। अर्थात् असत्यरूप जगत् बिषे अज्ञानजन्य जो इषणा तिसको त्याग के अपने आत्मा की रक्षाकरो ११। अर्थात् सर्वके अभाव से जे एक निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मसत्ता अवशेष रहे हैं तिस अवस्था बिषे अनुकूल हो। अरु किसी के १२। भी १३। धनकी १४। मत १५। आकांक्षा करो १६॥ अर्थात् यावत् नाम रूपात्मक जगत् है तावत् सर्व पंचविषयात्मक होने से इन्द्रियों का भोग्यरूपीधन है तिन में से किसी के भी धन की मत आकांक्षाकरो। अथवा यह मेरा यह मुझको प्राप्तहोय इस

---

* तै० उ० की आनन्दवल्ली बिषे। † छां० उ० अ० ४ बिषे। ‡ मां० उ० बिषे। ! पुरुषसूक्त में × भ० गीता में॥

बुद्धिको छोड़दे क्यों कि यह जगतूरूपी धन किसका है किन्तु किसीकाभी नहीं एकके समीपसे दूसरे के समीप जानेवाला चंचल अरु नाशवान् है ताते यावत् पंचविषयात्मक जगत् है तिस सर्वको मिथ्या जानके तिसकी आकांक्षा छोड़ सत्य सर्वात्मभाव बिषे स्थित हो १ ॥

तात्पर्य ॥

"ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत्" इस प्रथम मन्त्रके पूर्वार्ध से वेदभगवान्ने आत्मतत्त्वका उपदेशकिया। अरु "तेनत्यक्तेनभुञ्जीथाः" इस तृतीयपाद करके जिज्ञासु पुरुषको जो आत्मज्ञान की परिपक्वता इच्छित है तो आत्मज्ञान के विचार से संन्यासपूर्वक इषणात्रयका त्यागकरके अपने आत्माकी रक्षाकरे। अर्थात् इषणापूर्वक कर्मही जीवोंको नानाप्रकारके जन्ममरणादि महान् क्लेशको प्राप्त करनेवाले हैं तिनसे अपने आपकी रक्षाबिषे कर्म इषणाके न्यासपूर्वक आत्मज्ञानही समर्थहै तथाच "नान्यःपंथाविमुक्तये" मोक्षार्थ अन्यमार्ग नहीं। ताते इषणा त्रय त्यागके आत्मज्ञानद्वारा अपने आप की रक्षा करो। अरु "माग्रधःकस्यस्विद्धनम्" इस चतुर्थपाद करके कर्म इषणा के न्यासकी परिपक्वताके अर्थ सूचना है जो किसी के भी धनकी मत आकांक्षाकरो। अर्थात् मोक्षके अर्थ कर्म इषणा का न्यास अर्थात् संन्यास कियाहै जिसने तिसको कालत्रय में भी विषयादि पदार्थों की आकांक्षा कर्तव्य योग्य नहीं ॥

सम्बन्ध ॥

इस उपनिषद्का प्रथममन्त्र ब्रह्मविद्याके अधिकारी मुमुक्षु प्रतिहै जो मोक्षकामीको मोक्षार्थ संन्यासपूर्वक एक आत्मज्ञानही उपाय है सो प्रतिपादन करके अब जो कि संन्यासपूर्वक आत्मज्ञान के अभ्यास में असमर्थ हैं तिन मध्यम अधिकारी के अर्थ वेद भगवान् द्वितीय मन्त्रको प्रतिपादन करते हैं ॥

कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः
एवं त्वयि नान्यथेतो ऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे २॥

पदान्वयः ॥

इह कर्म्माणि कुर्वन् एव शतं समाः जिजीविषेत् एवं त्वयि नरे इतः अन्यथा न अस्ति कर्म न लिप्यते ॥

पदार्थ ॥

यहां [अग्निहोत्रादि विहित] कर्मोंको करते ही सौ वर्ष जीवनेकी इच्छाकरो । इसप्रकार तूं जो पुरुष है तिसमें इससे प्रकारान्तर नहीं है [जो] कर्मसे न लिपायमानहो २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

हे सौम्य! । यहां १ । अर्थात् आत्मज्ञानके अभ्यास की असमर्थता में कर्म्मों को २ । अर्थात् संध्या गायत्री अग्निहोत्रादि विहितकर्म जो कि वेदशास्त्रोंने धर्मरूपसे कर्त्तव्यकहे हैं अरु जिनके न करने से धर्महानिरूप प्रत्यवाय है तिन कर्म्मोंको करते ३। ही ४ रहो । अरु सकामकर्म मतकरो क्योंकि कर्ममें फलकी इच्छा न करने से निष्काम कर्मद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धिहोने से ज्ञानद्वारा कर्ममोक्षसाधकहै ताते निष्काम विहितकर्म करतेही रहो । इसप्रकार निष्काम विहितकर्म करतसंते जो । सौ१००।५। वर्ष ६ । जीवनेकी इच्छाकरो ७ । अर्थात् सौ वर्ष जो मनुष्यों के आयुकी परमावधि है तावत्पर्यन्त जो जीवने की इच्छा होय तो इच्छाकरो । अथवा जो सौ वर्ष परमावधि पर्यन्त जीवते रहो तो भी संसार बंधनकी निवृत्ति के अर्थ विहितकर्म निष्काम करतेहीरहो । अर्थात् यावत्पर्यन्त संसारसे दृढ़वैराग्य न होय तावत्पर्यन्त विहित कर्मका त्याग न करना । इसप्रकार ८ । कर्मकरने से आत्मज्ञान न होत सन्ते भी तुम ९ । पुरुषबिषे १० । अर्थात् नर शरीराभिमानी तुमबिषे कर्मबन्धन न होगा इससे ११ । अन्य प्रकारान्तर १२ । नहीं १३ । है१४ । अर्थात् सकामकर्म हैं सो

वारंवार जन्ममरणका हेतुहैं । तथाच । "*योनिमन्येप्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः स्थाणुमन्येनुसंयन्ति यथाकर्मयथाश्रुतम्"। ताते इषणात्रयके न्यासपूर्वक आत्मअध्यासमें असमर्थ पुरुष को केवल विहित निष्काम कर्महीं कर्तव्य है कि जिस करके कर्म से १५। नहीं १६। लिपायमानहो १७। अर्थात् विहित निष्काम कर्म करततन्ते जो कदापि अज्ञान किंवा आपत्त्यादिकरके तुमसेअशुभ कर्म भी बन आवेगा तो सो कर्म तुमको हानिकरने को समर्थ न होगा क्योंकि वो कर्म किसी कामनाको लेके नहीं हुआ २॥

तात्पर्य ॥

इषणात्रय बिषे दृढ़ वैराग्य भये विना संन्यास कर्तव्य नहीं क्योंकि वैराग्य विना संन्यास जो कि मोक्षमें आदि साधनहै सो मोक्षका साधक न होयके पतितत्वका हेतु होगा क्योंकि वैराग्य विना अन्तःकरण से कामना निवृत्त होती नहीं अरु कामना की निःशेष निवृत्ति विना वृत्तीकी एकाग्रता पूर्वक आत्माभ्यास होने का नहीं तब मोक्ष कहां किन्तु कदापि नहीं ताते वैराग्य विनाका संन्यास मोक्षका हेतु नहीं । अरु संन्यासाश्रम करने से कर्माधिकार रहे नहीं ताते देव पितृ आदिकों के अर्थ किंवा भोग्य कामनार्थ कर्म बने नहीं तब देव पितृ आदिकों के लोक की प्राप्ति अथवा कामना की सिद्धिसे भ्रष्टहोय नीचगति की प्राप्तिहोगी ताते इषणात्रय से दृढ़ वैराग्यभये विना संन्यास न लेके विहित जे वेदोक्त कर्म हैं ते निष्काम कर्त्तव्य हैं क्योंकि इषणा के त्यागपूर्वक संन्यास सहित आत्मअध्यास में असमर्थ पुरुषको सिवाय विहित निष्काम कर्मोंके कर्मबंधनोंकी निवृत्ति होनेके अर्थ अन्य उपाय कोई नहीं ॥

सम्बन्ध ॥

प्रथम मन्त्रमें मुमुक्षु के अर्थ इषणाके त्यागपूर्वक आत्मज्ञान प्रतिपादन किया । अरु इस द्वितीयमंत्रसे आत्मोपासना में अस-

* कठवल्ली उपनिषद्की पंचमवल्ली के ७ वें मंत्र में ॥

मर्थ पुरुषको संसारकी निवृत्तिके अर्थ विहित निष्कामकर्म प्रतिपादन किया। अब इन दोनोंका जो कि संसारके क्लेशोंकी निवृत्तिका साधनहैं तिनके त्यागी पुरुषहैं तिनकी निन्दाके अर्थ वेद भगवान् तृतीय मंत्रका प्रारंभ करते हैं ॥

असूर्य्या[6] नाम[7] ते[4] लोका[5] अन्धेन[1] तमसाऽऽ[2]
वृताः[3] । तांस्[15] ते[13] प्रेत्या[14] भिगच्छन्ति[16] ये[8] के[9] चा[10]त्मह-
नो[11] जनाः[12] ॥ ३ ॥

पदान्वयः ॥

अंधेन[1] तमसा[2] आवृताः[3] ते[4] लोका[5] असूर्य्या[6] नाम[7] ये[8] के[9] च[10] आत्महनः[11] जनाः[12] ते[13] प्रेत्य[14] तान्[15] अभिगच्छन्ति[16] ३ ॥

पदार्थ ॥

अदर्शनात्मक[1] अज्ञानसे[2] आवृतहैं[3] सो[4] लोक[5] असूर्य[6] नामहैं[7] जे[8] कोई[9] एक[10] आत्महत्यारे[11] पुरुषहैं[12] सो[13] मरके[14] तिन[15] (लोकोंमें) निश्चयप्राप्त[16] होतेहैं ॥ ३ ॥

भावार्थ मंत्र तीसरेका ॥

हे सौम्य! जो कि पूर्वकथित प्रकारसे विपरीत आचरण करने वाले पुरुष हैं। अर्थात् प्रथम कहा जो मुमुक्षु के अर्थ आत्मज्ञान अरु तिसकी असमर्थता में निष्काम विहितकर्म तिनको त्यागके कामुक अरु निषिद्ध कर्मोंकोही करते रहतेहैं ऐसे जे अविवेकी पुरुषहैं तिनको देहत्यागान्तर जिन लोकोंकी प्राप्तिहोती है तिसको कहतेहुये वेदभगवान् उन पुरुषों की निंदाकरतेहैं ॥ जे अदर्शनात्मक १। अज्ञानकरके २। आवरणहुये ३। जे ४। लोकहैं ५। अर्थात् आत्माके यथार्थ दर्शनकी योग्यता नहीं जिनमें ऐसे जे अदर्शनात्मक अज्ञानावृत देवतादि शरीररूपी लोक सो सर्व असूर्य ६ नामहैं ७। अर्थात् असूर्यलोक उसको कहतेहैं कि नहींहै ज्ञानरूपी प्रकाशता जिनमें कि जिसकरके अपनेआप आत्मा को यथार्थ अनुभवकियाजाय ऐसे जे देवादि तृणपर्यन्त शरीररूपी

लोक तिनको असूर्य अथवा असुर लोक इन नामोंसे कहतेहैं तिन लोकों में जे ८। कोई ९। कि १०। आत्महत्यारे ११ पुरुषहैं १२ अर्थात् जिन पुरुषोंको अपने आप अजर अमर अक्रिय अद्वैत आत्माके स्वभावका अर्थात् सोहमस्मि भावका अभाव है अर्थात् परमात्माको अपना आत्मत्वकरके न जानना सोई आत्मा का हनन है क्योंकि जो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वरूप आत्मा तिसको अविद्या दोषसे अन्यों के धर्मको न जानते सन्ते तुच्छ पापी अपराधी जन्म मरणवान् विपरीत भावसे जानना। तथाच। "✻ यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितरइतरं पश्यति"। इत्यादि। सोई उस आत्मा का परम निरादर करनाहै सो आत्माका निरादरकरना ही हनन करना है। दृष्टान्त। जैसे स्त्रीको पृथक्शय्यारूप निरादर करनाही उसका हनन करना शास्त्रकारों ने कहाहै। तैसेही वे पुरुष कि जिन्होंने अपने आप सत्यस्वरूपको यथार्थ न जानके अरु जाननेका साधन अन्तःकरणकी शुद्धि तिसकासाधन विहित निष्काम कर्म जो कि परम्परा करके आत्मज्ञानोत्पत्ति का हेतु है तिसको भी यथोचित न करके जीवनपर्यन्त सकाम किंवा निषिद्ध कर्मोंकाही अनुष्ठान करतेहैं। सो १३। शरीर त्याग के १४। अपने कर्मानुसार उन असुरनाम लोकमें १५। निश्चय प्राप्तहोते हैं १६। अर्थात् अज्ञानी पुरुष जो कि अविद्यादोष करके अपने सत्यस्वरूप आत्माका अनादररूपी हनन करनेवाले हैं सो देह त्याग के अनन्तर अपने कर्मानुसार देवता से तृणपर्यन्त शरीर रूपीलोकको प्राप्तहोते हैं। तथाच। "†यथाकर्म यथाश्रुतम्"।३॥

यहां असुरलोक कहनेसे जो देवलोकका भी ग्रहण है सो इस अर्थका अभिप्राय यह है जो देवताओं के लोक सो देवलोक तहां लोक कहिये शरीर अर्थात् देखते भोगते हैं कर्म के फल जहां सो लोक ऐसे जे देवशरीररूपी लोक सो स्वयं प्रकाश सर्व प्रधान सर्वोपरि परमात्माकी अपेक्षामें असुरही कहे जाते हैं क्यों जो

✻ बृ० उ० अ० ४ मैत्रेयी ब्रा० विषे † क० उ० के व० ५ की ७ श्रुति में ॥

छान्दोग्य बृहदारण्य इन इन उपनिषदों में इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओं को असुर करके वर्णन कियाहै एतदर्थ देवशरीरको भी असुरलोक कहतेहैं ताते देवताके शरीररूपी अदर्शनात्मक अन्धलोक सो अज्ञान अन्धकार से आवृत हैं क्यों जो देवताओं को सदैव विषयोंकीही लालसा रहती है सो विषयलालसा अज्ञानसे होती है ताते देवता अज्ञानावृत होने से अपने आप सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ जानसक्के नहीं। तथाच। "* देवैरत्रापि विचिकित्सितंपुरानहिसुविज्ञेयमणुरेषधर्मः"। "† नमेविदुः सुरगणाः"। ताते ऐसे जे अज्ञान अन्धकार से आवृत देव शरीररूपी असुरलोक तिन में अज्ञानी सकामी पुरुष जे विषयों की कामनासे देवाराधन करनेवाले हैं सो देहत्याग के अनन्तर प्राप्त होते हैं। अथवा जे पुरुष कामनाके वशभये भूत प्रेत जड़ादिकों की आराधना करतेहैं। अथवा प्रमाद करके आत्मज्ञान विहित कर्म किंवा सकामकर्म जे उत्तम मध्यम निकृष्ट स्वधर्म हैं तिन को त्याग के सदा निषिद्धकर्मोंकाही अनुष्ठान करतेहैं सो पुरुष अदर्शनात्मक अर्थात् नहीं होता यथार्थविवेक आत्मानात्म वस्तु का जिसकरके ऐसा जो अज्ञानरूपी अन्धकार तिसकरके आच्छादित हैं पशु पाषाण वृक्षादि शरीररूपी लोक तिसबिषे देह त्याग के अनन्तर निश्चय प्राप्त होते हैं। ताते सकामकर्मी किंवा सर्वथा कर्मत्याग के केवल विषयसेवी पुरुष सो देहत्याग के अनन्तर अपने कर्मानुसार देवतादि तृणपर्यन्त स्थावर जंगमरूप अन्धतम अज्ञानावृत शरीर को प्राप्तहोते हैं॥

तात्पर्य॥

जो पुरुष मोक्षका हेतु आत्मज्ञान अरु तिसकी प्राप्तिका साधन विहित निष्काम कर्म तिन दोनों को त्याग के केवल सकाम किंवा निषिद्ध कर्मोंको ही करतेहैं सो पुरुष अपने आपको नाना प्रकार की योनिरूप नरक में प्राप्त करनेवाले ताते आत्महत्यारे

* क० उ० की १व०कीर१ वींश्रुति। † भ०गी० अ० १०वें के श्लोकमें॥

होते हैं। एतदर्थ पुरुष को उचित है जो वेदवाक्यानुसार आत्महत्यारा न होयके यथार्थ आत्मज्ञानद्वारा अपनेआपकी रक्षाकरनेवाला आत्मरक्षक होय ॥

सम्बन्ध ॥

इस तृतीय मन्त्र बिषे जे पुरुष अज्ञान करके सकाम कर्म किंवा निषिद्ध कर्म करनेवाले हैं सो अपने आपका हनन करनेवाले ताते आत्महत्यारे अंधतमको प्राप्तहोते प्रतिपादन किये अब उन आत्महत्यारे से विपरीत विद्वान् आत्मरक्षक ज्ञानी तिस आत्मतत्त्वको साक्षात् अपना आप अनुभव करके मोक्षहोते हैं तिस आत्मतत्त्वको वेद भगवान् आगे चतुर्थ मन्त्रसे विपरीत गुणवान् प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् । तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

पदान्वयः ॥

एतत् अनेजत् एकं मनसो जवीयः पूर्वं अर्षत् देवाः न आप्नुवन् तिष्ठत् तत् धावतः अन्यान् अत्येति मातरिश्वा तस्मिन् अपः दधाति ॥

पदार्थ ॥

यह [आत्मा] कम्पमान नहीं एक मनसे शीघ्रगामी पहिले गया है देवतालोक [तिसप्रति] नहीं प्राप्तहोते अविक्रिय सोई शीघ्रचलते अन्योंको पीछे छोड़ता है वायु अंतरिक्षमेंचलनेवाला तिसबिषे कर्मोंको धारता है ॥

भावार्थ मन्त्र चौथे का ॥

हे सौम्य ! पूर्वकथित प्रकारके अविद्वान् आत्महत्यारे तिनसे विपर्यय जे प्रथममंत्रानुसार आत्मरक्षक ज्ञानवान् जिस अजर अमर अक्रिय आकाशवत् सर्वव्यापी परमात्मा जिसकरके चरा-

चर जगत् आच्छादितहै तिसको अपनाआप अनुभवकरके तद्रूप होतेहैं सो आत्मा इस मन्त्रविषे प्रतिकूल गुणों करके कहागया है तथापि इसमें कुछ विरुद्ध नहीं क्यों जो श्रुतिने आत्माको निश्चल भी कहा है अरु मनसे भी आगे जानेवाला कहा है ताते प्रत्यक्ष विरुद्ध भाषे है तथापि कुछ विरुद्ध नहीं क्यों जो आत्मा निरुपाधि होने से आकाशवत् सर्वत्र अचल एकरस क्रिया से रहित शुद्ध कहाजाता है सोई कहते हैं॥ यह १। आत्मा सर्वका अपनाआप अचलहै २। अर्थात् आकाशवत् सर्व क्रियासे रहित है फेर कैसा है। एक है ३। तथाच। "※एकमेवाद्वितीयम्"। ऐसा जो अद्वैत अचल अक्रिय आत्मा है सोई आत्मा मन से ४। आगे जानेवाला है ५। अर्थात् सर्व देहों विषे अन्तःकरणकी संकल्प विकल्पात्मक वृत्तिरूपी जे मन जिसको कि देह में रहत सन्ते अर्ध क्षणमात्र में देश देशान्तर किंवा अति दूर ब्रह्मलोक पर्यन्त संकल्प द्वारा जाने की शक्ति होने से शीघ्रगामी संज्ञा दी गई है तिस मनसे भी आगे जानेवाला है। अरु जहां जहां संकल्पद्वारा मन जाता है तहां तहां मनसे पहिलेही ६ गयाहै ७। अर्थात् जहां जहां मन जाताहै तहां तहां सर्वत्र सत्तारूप सिद्धहै ताते मनसे भी प्रथम गया कहते हैं तिस आत्मा को देवता ८। नहीं ९। प्राप्त होते १० अर्थात् उस आत्मा को चक्षुरादि इन्द्रियरूप देवता नहीं प्राप्त होते क्यों जो चक्षुरादि इन्द्रियों का अधिष्ठाता मन तिसका भी विषय आत्मा नहीं तब इन्द्रियों का विषय कैसे होगा कदापि न होगा इसही से कहा है जो देवता उस आत्मा को नहीं प्राप्त होते सो आत्मा अविक्रिय है ११। अर्थात् आकाशवत् परिपूर्ण अक्रिय है उसही आत्मतत्त्व के प्रकाश में मनआदि इन्द्रियां अपने २ विषयों को प्राप्त होती हैं इस हेतुसे आत्मा सर्वव्यापी सर्वत्र अक्रिय सिद्ध भया। ऐसा जो सर्वत्र एकरस अक्रिय आत्मा है। सोई आत्मा

※ छान्दोग्यउपनिषद् के छठे प्रपाठक के दूसरे खण्डकी श्रुति में॥

१२ । आप शीघ्र चलते १३ । अन्यों को १४ । पीछे छोड़जाता है १५ अर्थात् आत्मा सर्वत्र एकरस अक्रिय निरुपाधिरूप से उपाधिकृत क्रियावान् सम्पूर्ण संसारकी विशेष क्रिया को अनुभवकर्त्ता है । अथवा अविवेकी जे मूढ़ पुरुष हैं तिनको आत्मा देह २ प्रति भिन्न भिन्न भासे है अरु तिस बिषे सर्व उपाधि के धर्म को आत्माही के धर्म मानते हैं ताते उन पुरुषों को आत्मा जन्म मरणवान् भासे है परन्तु वास्तव करके आत्मा आकाशवत् परिपूर्ण सर्वत्र सर्व क्रिया से रहित अपने आप बिषे स्थितहै तिस आत्मतत्त्व बिषे १६ । अन्तरिक्ष में चलनेवाला वायु १७ । कर्मों बिषे १८ । धारता है १९ । अर्थात् जिस बिषे सर्व ब्रह्मांड ओतप्रोत है ऐसा जो सूत्रात्मा कि जिसके आश्रय सर्व ब्रह्माण्ड की क्रिया होती है सो आत्मतत्त्व की सत्ताके आश्रय सर्व ब्रह्माण्डके कर्मों को अपने बिषे धारता हैं । तथाच । "भिषास्माद्वातः पवते" इत्यादि ॥

तात्पर्य ॥

प्रथम मन्त्र करके कहा जो यह सर्व नाम रूपात्मक जगत् परमात्मा करके आच्छादितहै । तिस परमात्माका स्वरूप मुमुक्षु को भलीप्रकार जाननेके अर्थ इस मन्त्र बिषे उपाधि निरुपाधि द्वारा कर्त्ता अकर्त्ता आदि भाव से वेद भगवान् ने कहा है ॥

सम्बन्ध ॥

जो कि इस चतुर्थ मन्त्रसे मुमुक्षु के बोधार्थ आत्माको उपाधि द्वारा गमनादि धर्मवान् अरु उपाधि के अभावसे सर्व धर्म रहित शुद्ध कहा है । अब इसही अर्थको मुमुक्षु की दृढ़ता के अर्थ वेद भगवान् आगे पंचममन्त्र प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐतत्सत् ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्व्वस्य तदु सर्व्वस्यास्य बाह्यतः॥ ५॥

पदान्वयः॥

तत् एजति तत् न एजति तत् दूरे तत् उ अन्तिके तत् अस्य सर्व्वस्य अन्तः तत् उ अस्य सर्व्वस्य बाह्यतः॥

पदार्थ॥

सो आत्मा चलताहै सोई नहीं चलता सोई दूरहै सोई आत्मा समीपहै। सोई इस सर्वके अन्तरहै सोई आत्मा इन सर्वके बाहर है॥

भावार्थ मन्त्र पाँचवेंका॥

हे सौम्य! पूर्व चतुर्थमंत्र बिषे आत्मा जो कि सर्व उपाधिसे रहित केवल केवलीभाव अपने आपबिषे ज्योंका त्यों कहा तिस आत्माको उपाधि निरुपाधि द्वारा प्रतिकूल गुणोंसे सर्वत्र सिद्ध किया ताते सर्वप्रकार एक विज्ञानघन आत्माही है। तिस आत्मा बिषे उपाधि निरुपाधि का आरोप केवल मुमुक्षुको समझावने के अर्थ वेदने कहाहै॥ अब पुनः मुमुक्षुके दृढबोधार्थ इस पंचम मंत्र बिषे आत्माको प्रतिकूल गुणें करकेही प्रतिपादन करते हैं॥

हे सौम्य! सोई आत्मा १। चलताहै २। अर्थात् जंगमशरीर रूपी उपाधि साथ मिलके गमनागमन क्रियावान् भासताहै ताते चलताहै। अथवा लिंगशरीररूपी उपाधि साथ मिलके स्वर्ग नरकादिकों बिषे जाता आवता प्रतीत होताहै सो सर्व उपाधिके धर्म अज्ञानके आश्रय आत्मा बिषे कल्पना करते हैं 'जैसे बालक मेघों की धावमानताको देखके अज्ञानके आश्रय चन्द्रमा को चलता कहते हैं' तैसेही अज्ञानके आश्रय शरीरादि उपाधिके धर्मशुद्ध निरुपाधि आत्माबिषे मानतेहैं परन्तु आत्मा सर्वउपाधिसे रहित अक्रियहै सो उपाधिद्वारा चलताहै अरु। सोई आत्मा ३। नहीं ४।

चलता ५। अर्थात् जो आत्मा देहादि उपाधि साथ मिलके चलत है सोई उपाधिके अभावसे नहीं चलता। जे विद्वान् आत्मवेत्ता हैं सो *"नेतिनेति" श्रुतिके वाक्यकरके सूक्ष्म स्थूल सर्वउपाधिको गिराय महासूक्ष्म आत्मतत्त्वको आकाशवत् अचल अक्रिय सर्वत्र अनुभव करते हैं ताते वास्तवकरके आत्मा नहीं चलता अरु। सोई आत्मा ६। दूरहै ७। अर्थात् अज्ञानी पुरुषों को आत्मतत्त्व अपना आप होत संतेभी शतकोटि वर्ष पर्यन्तभी ज्ञानविना प्राप्त नहीं ताते दूरहै। अथवा ब्रह्मलोकादि यावत् लोकलोकान्तर हैं तहां पर्यन्त भी जाने से ज्ञानविना अप्राप्य है ताते आत्मा दूरहै। अथवा आत्मतत्त्व मनबुद्धि इन्द्रियादिकोंका विषय नहीं एतदर्थ भी दूरहै। तथाच † "दूरात्सुदूरे" ताते अज्ञानी पुरुषोंको आत्मा दूरसे भी दूरहै अरु सोई ८। आत्मा ९। समीप है १० अर्थात् जो आत्मा अज्ञानियोंको दूरसे भी दूरहै सोई आत्मा यथार्थदर्शी ज्ञानवान् को समीप है सो कैसा समीप है। तथाच। ‡ "निहतोगुहायाम्"। बुद्धिरूपी गुहाविषे सर्वका अपनाआप अनुभवी स्थित है ताते अत्यन्त समीप है। अरु सोई ११। इस १२। सर्वके १३। अन्तर है १४। अर्थात् जो आत्मा विद्वानोंका अपनाआप है सोई सम्पूर्ण चराचरका अन्तर अनुभवकर्त्ता अपना आप है। तथाच *"आत्मासर्वान्तर" ताते आत्मा इन सर्वके अन्तर है। अरु सोई १५। आत्मा १६। इन १७। सर्वके १८। बाहर है १९॥ अर्थात् जो आत्मा सर्वके अन्तर है सोई आत्मा आकाशवत् आकाशादि सर्वके बाहर है तथाच × "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" ॥ ५ ॥

---

* बृहदारण्यउपनिषद् के द्वितीयाध्याय मूर्त्तामूर्त्त ब्राह्मण विषे ॥

† कठवल्ली उपनिषद् की द्वितीयावल्ली की २० वीं श्रुति में ॥

‡ क० उ० की वल्ली २ की २० श्रुति में। * बृ० उ० के अ० ३ अन्तर्यामी ब्रा० में ॥

× मुण्डक उपनिषद् के तृतीय मुण्डककी दूसरी श्रुतिमें ॥

तात्पर्य ॥

आत्माको चलता न चलता दूर समीप अन्तर बाहर सर्वत्र प्रतिपादन किया सो केवल मुमुक्षु के बोधार्थ उपाधिका आरोप लेके सर्वप्रकार एक आत्मतत्त्वही प्रतिपादन कियाहै कि जिससे मुमुक्षुका द्वैतभाव अशेषअभाव होय सर्वप्रकार एक अद्वैत आत्मतत्त्व के निश्चयपूर्वक परमशान्ति प्राप्तहोय ॥

सम्बन्ध ॥

चतुर्थ अरु पंचम इन दोनों मन्त्र से उपाधि निरुपाधिद्वारा विशेष निर्विशेषकरके एक अद्वैत आत्मतत्त्व प्रतिपादन किया। अब आगे मुमुक्षु के अर्थ आत्मविचारकी रीति अरु तिसका फल मोक्ष दो मन्त्रकरके वेदभगवान् प्रतिपादन करते हैं ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

पदान्वयः ॥

यः तु सर्वाणि भूतानि आत्मनि एव अनुपश्यति च सर्व भूतेषु आत्मानं ततः न विजुगुप्सते ॥

पदार्थ ॥

जो कोई सर्व भूतोंको आत्माबिषेही देखताहै फेर सर्व भूतोंबिषे आत्माको ताते नहीं घृणाकरता ॥

भावार्थ मन्त्र छठेका ॥

हे सौम्य! जो कोई मुमुक्षु आत्मज्ञानी कि जिसकोअपना आप आत्मा संशय विपर्ययसे रहित ज्योंकात्यों अनुभव भया है सो १-२। सर्व ३। भूतोंको ४। आत्माबिषे ५। ही ६। देखता है ७। अर्थात् जो कोई आत्मानुभवी पुरुष है सो अव्याकृत से तृणपर्यन्त सर्व कार्यकारणात्मक भूतोंको आत्माबिषेही देखता है।' जैसे जलबिषे तरंग तैसे '। पुनः ८। सर्व ९। भूतोंबिषे १०। आत्माको ११। देखता है। अर्थात् जैसे सर्वभूतोंको अपनेआप

बिषे तैसेही सर्वभूतोंबिषे एक अपनेआप आत्माको देखता है । ' जैसे सर्वतरंग बुद्बुदादिकों बिषे एक जलको देखता है ' । इस प्रकार जलतरंगके दृष्टान्त प्रमाण आत्माबिषे जगत् अरु जगत् बिषे आत्माको देखता है सो । ऐसे देखनेसों १२ । नहीं १३ । घृणा [ग्लानि] करता १४ । अर्थात् ग्लानिआदि द्वैतभाव बिषे होतेहैं सो द्वैतभाव अविद्याकरके होता है । तथाच * " यत्र हि द्वैतमिवभवति तदितरइतरम्पश्यति " । अर्थात् अविद्याकरके द्वैतभाव अरु द्वैतभाव बिषे ग्लानिआदि होतेहैं सो अविद्या आत्मज्ञानकी अशेष निवृत्तभई है तातेही द्वैतभावका अभाव भया है इसहीसे एक अद्वैत आत्मभाव निश्चय भया है सो आत्मा सदा शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभावहै इसहीसे ग्लानिआदि नहीं करता । तथाच । † " यस्तुसर्वमात्मैवाभूत्तत्केनकम्पश्येत् " ॥ इत्यादि ॥

तात्पर्य ॥

जो ज्ञानवान् सम्पूर्ण जगत्को केवल एक अपनाआप आत्माही जानता है सो तिस अभ्यासके बलसे किसी पदार्थ की ग्लानिआदि नहीं करता अर्थात् जिसप्रकार ज्ञानी आत्मवेत्ता सर्वात्मभाव के दृढ़अभ्याससे ग्लानिआदि नहीं करते तैसेही सर्व मुमुक्षुको एकात्मा विचार के अभ्यासबलसे किसी भी पदार्थ बिषे रागद्वेषादि कुछ भी कर्त्तव्य नहीं ॥

सम्बन्ध ॥

इस मन्त्रबिषे मुमुक्षुको सर्वात्मभाव देखाय सूचना किया कि आत्मअभ्यास वाले को किसी पदार्थमेंभी ग्लानि आदि कर्त्तव्य नहीं । अब ७ वें मन्त्रकरके सर्वात्मअभ्यासी को वेद भगवान् मोक्षका स्वरूप कहते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र
को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

---

* बृ० उ० के अ० ४ में ब्रा० बिषे । † बृ० उ० के षष्ठ अध्यायबिषे ॥

पदान्वयः ॥

विजानतः[1] यस्मिन्[2] सर्वाणि[3] भूतानि[4] आत्मा[5] एव[6] अभूत्[7] एकत्वं[8] अनुपश्यतः[9] तत्र[10] कः[11] मोहः[12] कः[13] शोकः[14] ॥

पदार्थ ॥

भलीप्रकार जाननेवाले[1] को जिसकाल[2] में सम्पूर्ण[3] भूतोंको[4] आत्मा[5] ही[6] है[7] एकत्व[8] देखनेवालेको[9] तिसकाल[10]में क्यों[11] मोह[12] क्यों[13] शोक[14] ॥ ७ ॥

भावार्थ मन्त्र सातवेंका ॥

हे सौम्य! पूर्वकथित आत्माको वेद गुरु अरु अपने अनुभव द्वारा भलीप्रकार जाननेवाले को १। जिसकालमें २। सम्पूर्ण ३। भूतों को ४। आत्मा ५। ही ६। है ७। अर्थात् आत्मकामा मुमुक्षु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यद्वारा श्रुतिके। ❀ "सर्वंखल्विदंब्रह्म" † "नेहनानास्तिकिंचन"। इत्यादि वाक्यों कर के साक्षात् अपने अनुभवसे जिसकाल में यावत् स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणात्मक सर्व भूतोंको। ‡। "आत्मैवेदंसर्वं" श्रुतिके प्रमाण से अपनाआप आत्माही है ऐसा जानता है। अरु ऐसाजान के एकत्व८। देखनेवालेको ९। तिसकाल में १०। क्या ११। मोह।१२। क्या १३। शोक १४ ॥ अर्थात् जिसप्रकार श्रुतियों के वाक्य आचार्य द्वारा श्रवण करके अपने आत्मा को सर्वत्र आत्मभाव से अनुभव किया है तिस आत्मतत्त्वका एकत्व देखता है 'जैसे घट मठ सरावले आदि यावत् मृत्तिका के कार्य हैं तावत् व्यवहार दृष्टिसे सर्व के नामरूप क्रिया पृथक् २ भासे हैं परन्तु परमार्थ दृष्टि से घट मठादिकों के नामरूप मृत्तिका विषे "❀ वाचारंभणं विकारोनामधेयं"। वाचारंभणमात्र अर्थात् कल्पित हैं † "मृत्तिकेत्येव सत्यम्" एक मृत्तिकाही सत्य है। तैसेही सम्पूर्ण नाम

❀ छां० उ०प्र०४विषे। † बृ० उ० के अ०६विषे। ‡ छां०उ०केप्र० ७ विषे।
❀ † छां० उ० प्र० ६ की प्रथमश्रुति में ॥

रूपात्मक जगत् व्यवहारदृष्टि से पृथक् २ भासे है परन्तु वास्तव में परमार्थ दृष्टिसे । ❀ " एषोन्तरात्म्यामिदꣳसर्वम् " सम्पूर्ण चराचर एक आत्माही है । इस प्रकार श्रुतियों के वाक्य प्रमाण अपने आप अनुभव से सर्वत्र आत्माही के एकत्व का निश्चय पूर्वक दृढ़ अभ्यास करता है तिसकालमें अर्थात् जब कि अभ्यास द्वारा अन्तःकरण की सर्वात्मभाव रूपावृत्ति दृढ़उदयहोतीहै तिस विज्ञानावस्था में क्या मोह और क्या शोक किंतु कुछभी नहीं क्यों जो † । " तरति शोकमात्मवित् " । आत्माको जाननेवाला शोक को तरता है । अर्थात् जिस पुरुषने सर्वत्र एक अपने आप आत्माही को अनुभव किया है अरु तिस बिषे अभ्यास द्वारा स्थितिपायाहै सो पुरुष शोक मोहादिकों से तरजाताहै । ताते आत्मवेत्ता को शोक मोहादि नहीं क्यों जो शोक मोहादिकों का कारण जे कामना सो तो ज्ञानवानकी " इहैव सर्वे प्रविलीयन्तिकामाः " यहां विज्ञान अवस्था में ही सर्वकामना अभाव होजाती है । अरु कामना का कारण अविद्या है सो ज्ञानवानकी अविद्या आचार्य से तत्त्वमस्यादि उपदेश पावतेही अपने कार्य कामना अरु तज्जन्य शोक मोहादि सहित अभाव होजाती है । इसही हेतु से जिसज्ञानवान् को सर्वत्र एक अपनाआप आत्मा ही निश्चय भया है तिसमहात्माको शोकमोहादि कदापि नहीं ७॥

तात्पर्य ॥

" यस्तुसर्व्वाणिभूतानि " यहां से लेके " एकत्वमनुपश्यतः " यहां पर्यन्त ६-७ दो मन्त्रहैं तिनमें सातवें मन्त्र का तृतीयपाद " तत्र को मोहः कः शोकः " जो कि अन्वय की रीति से चतुर्थ पाद है तिसको छोड़के चारपादछठे मन्त्रके अरु तीनपाद सातवें मंत्र के इसप्रकार सातपाद पौनेदो १॥। मन्त्र कर के वेद भगवान् ने मुमुक्षु के अर्थ आत्मविचारकी रीति संक्षेप

❀ छां० उ० के प्र० ६ के ८ वें खण्डकी श्रुति में † छां० उ० प्र० ७ वें के प्रथमखण्ड की श्रुति में ॥

मात्र सूचन कियाहै। अरु सातवें मन्त्रके तृतीय पाद करके वेद भगवान् ने ज्ञानवान् के बिषे शोक मोहका अभाव रूप लक्षण अरु सोई मुमुक्षुके अर्थ फल कहा है क्योंकि ज्ञानवान् के बिषे अविद्याकी निवृत्तिका लक्षण शोक मोहादिकोंका न होनाही है। अर्थात् अज्ञान का कार्य शोक मोहादि सोई अज्ञान का लक्षण ताते अज्ञान के लक्षण जे शोक मोहादि तिनकी जो निवृत्ति सोई अज्ञान की निवृत्ति का लक्षण ताते ज्ञानवान् के बिषे अज्ञान के कार्य जे शोक मोहादि तिन के अभाव द्वारा अज्ञानकी निवृत्ति मानके तिसको बुद्धिमान् ज्ञानी कहते हैं। ताते शोक मोहका न होना भी ज्ञानवान्के लक्षण हैं। अरु मुमुक्षु जब जानताहै कि। "तरतिशोकमात्मवित"। आत्मवेत्ता शोकको तरताहैतब शोक तरने के अर्थ आत्मज्ञानका जिज्ञासुहोय आचार्य के समीपजाय श्रुति के तत्त्वमस्यादि वाक्यद्वारा यथार्थ आत्मज्ञानपाय शोक मोहादिकों से रहितहोता है ताते मुमुक्षुको आत्मज्ञानका फल शोक मोहादिकों का अभाव होनाही है ताते "। तत्र को मोहः कः शोकः"। इस पादकरके शोक मोहादिकों का जो अशेष भाव सोई ज्ञानवान्के लक्षण अरु मुमुक्षुको आत्मज्ञान का फल कहा। अरु शोक मोह के अभाव कहने से यावत् अविद्या का कार्य है तावत् सर्वका अभाव ग्रहण होताहै क्योंजो वेद का कहना आक्षेपपूर्वक है क्योंकि सर्वात्मभाव से आत्मा का अनुभव करनेवाले जे पुरुषहैं सो ज्ञानवान् आत्मवेत्ता तिन में यथार्थ ज्ञानकरके अविद्या अरु तज्जन्य द्वैतभाव तिसका निःशेषअभाव भया है तहां शोक मोह कहां किन्तु कदापि नहीं। ताते ज्ञानवान्के बिषे शोक मोहउपलक्षण करके षट्ऊर्मीसहित अविद्याका अभाव समझना। तहां शोक मोह मनकी ऊर्मी, क्षुधापिपासा प्राणकी ऊर्मी, जन्म मरण देहकी ऊर्मी। ताते यह षट् ऊर्मी मन प्राण शरीरकी हैं आत्मा की नहीं आत्मा सर्वऊर्मी से रहित केवल शुद्ध विज्ञानघन आकाशवत् अपने बिषे आपस्थित

है । एतदर्थ पूर्वकथितप्रकारसे इषणात्रयके त्यागपूर्वक षट्ऊर्मी से रहित जो शुद्ध स्वयंप्रकाशआत्मा तिसकी सर्वात्मभावसे अपनेआपबिषे अभेदभावना कि सो सर्वात्मा मैंहौं । अर्थात् यह जो अन्तःकरणकी अहंकाररूपा निश्चयात्मकवृत्ति कि सो सर्वात्मा मैं हौं तिसको गिरायके शुद्ध चैतन्यघन अफुर स्वयंप्रकाश सर्वविशेषतासे रहित साक्षात् अपनेआपबिषे आप होताहै ऐसे दृढअभ्यासवाले जे ज्ञानवान् । "नैतस्यप्राणा उत्क्रामन्ति" "तैत्रैवसमवनीयन्ते" "ब्रह्मैवसन्ब्रह्माप्येति" तिसकेप्राण देहावसानसमये देहसे न निकलके तहांही अपने अधिष्ठान चैतन्यआत्मा बिषे लीनहोते हैं ताते ज्ञानवान् जो आत्मअध्यासी पुरुष सो सर्व उपाधि से रहित जहांहै तहां ब्रह्मही है । तथाच "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" ॥

सम्बन्ध ॥

इसमंत्रबिषे मुमुक्षुको आत्मविचारकहके आत्मज्ञानका फल शोक मोहादि सर्वविकार अरु तिनका कारण अविद्या तिसके अभावपूर्वक मोक्षकहा अब ज्ञानवान् ब्रह्मआत्माकी एकतारूप अभ्यासके बलसे अन्त में देहसे न निकलके यहांही इस शरीर में जिस ब्रह्मसाथमिलके ब्रह्मही होताहै तिस परमात्मा परब्रह्मका स्वरूप विधिमुख अरु निषेधमुखकरके वेदभगवान् आगे अष्टम मंत्रकरके प्रतिपादन करते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

सँ पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः । स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

पदान्वयः ॥

शुक्रं अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम् सः

१–२ बृ० उ० अ० ६ के शारीरकब्रा०की ५श्रुतिमें । ३ बृ० उ० के में

पर्य्यगात् कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः शाश्वतीभ्यः समाभ्यः याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात् ॥ ८ ॥

पदार्थ ॥

शुद्ध कायारहित छिद्ररहित शिरारहित निर्मल पापरहित है सो व्यापकहै क्रांतदर्शी मनकाईश सर्वोपरि स्वयंविद्यमान यथाभूतकर्मफल साधनसे अनन्तकालस्थायी प्रजापतिके अर्थ पदार्थों को विभागकरताभया ॥ ८ ॥

भावार्थ मन्त्र आठवेंका ॥

हे सौम्य ! पूर्वकथित प्रकार जे मुमुक्षु इषणासे रहित होयके श्रुतियों के । " * स आत्मातत्त्वमसि" * "अयमात्माब्रह्म" † "एतद्वैतत्" × "तत्त्वमेव त्वमेवतत्" । इत्यादि वाक्यों प्रमाण ब्रह्मआत्माकी एकतारूप अभ्यास करनेवाला सो जिसपरमात्मा साथ 'नदी समुद्रवत्' अभेद होताहै सो परमात्मा हे सौम्य ! शुद्ध है १। अर्थात् ज्योतिमय दीप्यमान स्वयंप्रकाश है । पुनः कैसा है कायारहित अकाय है २। अर्थात् समष्टि सूक्ष्मउपाधि लिंगशरीर (पुर्यष्टिका) अरु व्यष्टि सूक्ष्मउपाधि महत्तत्त्वादि अष्ट प्रकृति विकृति अथवा समस्त सूक्ष्मशरीरों की समष्टता हिरण्यगर्भ । अर्थात् सूक्ष्मशरीररूपी व्यष्टि समष्टि उपाधिसे रहित ताते अकाय है । पुनः कैसा है छिद्ररहित अछिद्र है ३ । अर्थात् इन्द्रियों के गोलकरूपी छिद्र तथा फोड़ा इनसे रहितहै । पुनः कैसाहै शिरा रहित अशिरा है ४ । अर्थात् शिराकहिये नाड़ी तिनकरके भी रहित है यहां छिद्र अरु नाड़ियों के कहने से व्यष्टि स्थूलशरीर रूपी उपाधि अरु समष्टि विराट् शरीररूपी स्थूलउपाधि तिनसे रहित है । पुनः कैसाहै शुद्धहै ५ । अर्थात् मूलप्रकृति माया अरु तिसका कार्य तिनसे रहित शरत्काल के आकाशवत् निर्मल सदा शुद्ध है । पुनः कैसाहै पापरहित अपाप है ६ । अर्थात् धर्म्म अधर्म्म कर्त्ता अकर्त्ता पुण्य पाप स्वर्ग नरक जन्म मरण दुःखसुख

छांदोग्य मांडूक्य † कठवल्ली, × कैवल्य,। उपनिषदों विषे ॥

बंध मोक्षआदि यावत् द्वंद्वरूपी पापहैं तिनसर्वसे रहित अपापहै। सो ७। अर्थात् जो परमात्मा सर्वउपाधिसे रहित सदाशुद्ध प्रतिपादन किया है सो परमात्मा व्यापक है ८। अर्थात् आकाश से भी महासूक्ष्म आकाशादि सर्वबिषेव्यासहै॥हे सौम्य! जोपरमात्मा सर्व उपाधिसे रहित परमशुद्ध जिसको श्रुतियोंने।"† अस्थूलमनएव ह्रस्वमदीर्घमलोहित "। इत्यादि नेति नेति द्वारा निषेध मुख प्रतिपादन किया है सोई सर्वव्यापी परमात्मा को इसमन्त्र के पूर्वार्ध "। शुक्रमकायमव्रणं "। इत्यादि करके निषेध मुख प्रतिपादन किया है अब उसही परमात्मा को इसही मन्त्रके उत्तरार्ध करके विधि मुखद्वारा सविशेष प्रतिपादन करतेहैं हे सौम्य! जो परमात्मा सर्व उपाधि से रहित सदाशुद्ध आकाशवत् सर्वव्यापी कहा है सोई परमात्मा । कवी ९ । अर्थात् क्रान्तदर्शी सर्वका द्रष्टा है । तथाच । ❋ "नान्यतो ऽस्ति द्रष्टेत्यादि" । पुनः कैसा है मनीषी १० । मनका जाननेवाला सर्वज्ञ ईश्वरहै। पुनः कैसा है सर्व के ऊपर है ११ । अर्थात् आकाशादि किसी करकेभी आच्छादित न होत सन्ते आकाशादि सर्वको आच्छादन करने वाला सर्व की प्रथमावधि है ताते सर्व के ऊपर है । अथवा सूर्य चन्द्र पृथिवी जल अग्नि वायु काल दिशा देव पितृआदि भूत भौतिक यावत् जगत् है तिस सर्व के ऊपर सर्वका नायक सर्व को अपनी आज्ञा में चलावने वाला है ताते सर्व के ऊपर है। तथाच "। × एतस्य वाऽक्षरस्य प्रशासने गार्गी सूर्य्याचन्द्रमसौ विध्रत तिष्ठति "। इत्यादि । पुनः कैसा है स्वयम्भूहै १२ । अर्थात् आकाशादि जिनके २ ऊपर है सो सर्व अपनी इच्छा से आपही हुआ है अरु आप स्वतःसिद्धहै ताते स्वयम्भू है। ऐसा जो स्वयम्भू सर्वोपरि सर्वज्ञ स्वयम्प्रकाश सर्वका द्रष्टा नित्यशुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव परमात्मा परमेश्वर है सो। अनन्तकाल स्थायी१३।

---

† यह बृहदारण्य उ० के ५ वें अध्याय के ८ वें ब्राह्मण बिषे ॥

❋ ×बृ० उ० के अ० ५ वें के अष्टमब्राह्मण की ११ तथा ९ श्रुति में ॥

संवत्सर के अर्थ १४। अर्थात् संवत्सरनाम प्रजापति के अर्थ। यथा भूतकर्म फल साधन से १५। अर्थों को १६। अर्थात् कर्त्तव्य पदार्थों को जो कि अग्निहोत्रादि रूपसे कर्त्तव्य हैं। यथा विभाग से करताभया १७॥ ८॥

तात्पर्य॥

"ईशावास्यमिदꣳसर्वं" इस प्रथम मन्त्र करके परमात्मा अरु तिसकी प्राप्ति का साधन इषणात्रयसे रहित संन्यासपूर्वक आत्मज्ञान मुमुक्षुके अर्थ सूचना किया १। अरु "कुर्व्वन्नेवेह कर्माणि" इस दूसरे मंत्र करके इषणात्रय के त्यागपूर्वक आत्म-अध्यास में असमर्थ पुरुषको कर्म्मबन्धनों की निवृत्ति के अर्थ विहित निष्काम अग्निहोत्रादि कर्म कर्त्तव्य प्रतिपादन किया २॥ अरु। "असूर्य्यानामतेलोका"। इस तृतीय मन्त्र करके पूर्व कथित उभय का जो त्यागी पुरुष है अर्थात् आत्म अध्यास अरु विहित निष्काम कर्म जो कि उत्तम मध्यम रीति से परमार्थ का हेतु हैं तिनको त्याग के केवल सकाम अथवा निषिद्ध कर्मों को ही करते हैं तिन पुरुषों को अपने कर्मानुसार असुरलोक प्राप्ति द्वारा तिनकी निन्दा प्रतिपादन किया ३॥ अरु इनतीन मंत्रों में तीनप्रकार के अधिकारी सूचित किये तहां प्रथम मंत्रप्रमाण आत्माध्यासी पुरुष मोक्षका भागी उत्तमाधिकारी। अरु दूसरे मन्त्र प्रमाण विहित निष्काम कर्म्म कर्त्ता पुरुष ब्रह्मलोक का भागी मध्यम अधिकारी। अरु तृतीय मंत्र प्रमाण केवल सकाम अरु निषिद्ध कर्म सेवी अधर्मी असुरलोक अरु अन्धतमके भागी आत्महत्यारे पुरुष निकृष्ट अरु अधम अधिकारी। प्रतिपादन किये॥ अब प्रथम मंत्र करके आत्मरक्षार्थ जिस परमात्मा की अभेद भावनारूप अभ्यास सो उत्तमाधिकारी मुमुक्षुके अर्थ कहा है तिस परमात्मा को भलीप्रकारसे जानने के अर्थ "अनेजदेकं" अरु "तदेजति" ४-५ इन चतुर्थ पंचम दो मन्त्रकरके प्रतिपादन किया। अरु उस परमात्मतत्त्वके विचार अध्यास

की रीति मुमुक्षुके अर्थ " यस्तुसर्व्वाणिभूतानि " अरु " यस्मिन्सर्वाणिभूतानि " ६--७ इन षष्ठ सप्तम दो मन्त्र करके प्रतिपादन किया । अरु सप्तम मंत्र के तृतीय पाद करके शोक मोह के अभावद्वारा ज्ञानवान्को सम्यक्ज्ञान प्राप्तिका लक्षण देखाया। अरु मुमुक्षुपुरुष सर्वात्मभावना रूपसे ब्रह्मआत्माकी अभेद भावनारूप अभ्यास से परमात्मा के साथ " * यथानद्यःस्पन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्तिनामरूपेविहाय । तथाविद्वान्नामरूपाधिमुक्तः परात्परंपुरुषमुपैतिदिव्यम् " इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे नदीसमुद्रवत् भेदसे रहित अभेद एक होता है तिस परमात्मा का स्वरूप " सपर्य्यगाच्छुक्रमकायं"इस अष्टम मंत्रकरके निषेधमुख अरुविधिमुख प्रतिपादन किया अर्थात् " † ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति " ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मही होता है । सो कह के ब्रह्मरूपस्वरूप ज्ञानवान्की परम गति देखाय प्रथम मन्त्र के अनुसार अधिकारी मुमक्षु ज्ञानवान् का प्रकरण चतुर्थ से अष्टम मंत्रपर्यन्त पांच मंत्र करके वेद भगवान् ने प्रतिपादन किया ॥ यहां पर्यन्त इसउपनिषद् का पूर्वार्ध प्रतिपादनकरके आगे मध्यम अरु कनिष्ठ अधिकारी का प्रसंग नवम९मंत्रसे अष्टादश १८ मंत्र पर्यन्त अर्थात् ग्रन्थकी पूर्णतापर्यन्त दश १० मंत्र करके वेदभगवान् इस उपनिषद्का उत्तरार्ध प्रतिपादन करतेहैं ॥ ॐ तत्सदिति शुक्लयजुर्वेद माध्यंदिनिशाखा के ईशावास्य मंत्रोपनिषद्केपूर्वार्द्धकी भाषा टीका समाप्त शुभम् ॥

सम्बन्ध ॥

इस मंत्र विषे परमात्मा को निषेध अरु विधिमुख द्वारा प्रतिपादन करके प्रथम मंत्रानुसार उत्तमाधिकारी ज्ञानवान्काप्रसंगप्रकरण समाप्तकिया । अब आगे मध्यमअधिकारी अरु कनिष्ठअधमाधिकारी का प्रसंग चलेगा तहां प्रथम मध्यमाधिकारी का प्रसंग न कहके कनिष्ठ अधमाधिकारी जे तृतीयमंत्र करके आरम-

---

*। † यह मुण्डक उपनिषद् के षष्ठ मुण्ड की ८--९ श्रुतियों में ॥

हत्यारे कहे हैं तिनकी जो परलोक गति तिसको पुनः नव ९ वें मन्त्रकर के वेदभगवान् प्रतिपादन करते हैं ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳬं रताः ॥ ९ ॥

पदान्वयः ॥

ये अविद्याम् उपासते [ते] अन्धं तमः प्रविशन्ति ये उ विद्यायाम् रताः ते ततः भूय इव तमः [प्रविशन्ति] ॥

पदार्थ ॥

जे पुरुष अविद्याको उपासतेहैं [सो] अदर्शनात्मक अज्ञान में प्रवेशकरतेहैं [अरु] जे कोई विद्याविषे रतहैं सो तिससे भी अधिक ऐसे तममें [प्रवेशकरतेहैं] ॥

भावार्थ मंत्र नवम का ॥

हे सौम्य! जे १ । अविवेकी सकाम पुरुष अविद्या की २ । उपासनाकरतेहैं ३ । अर्थात् ब्रह्मविद्या से विपर्यय जो अविद्या अग्निहोत्रादि लक्षणरूप कर्म सो फल प्राप्तिके अर्थ निरन्तर अनुष्ठानकरतेहैं सो अदर्शनात्मक ४ । अज्ञानरूपी अन्धकार में ५ । प्रवेशकरते हैं ६ । अर्थात् जे पुरुष कामना सहित अग्निहोत्रादि कर्म का अनुष्ठान करते हैं सो स्वर्गादिकों में स्वकर्मके फल को भोग ते नहीं है अपने आत्माकी दर्शन योग्यता जिनमें ऐसे जे अदर्शनात्मक अज्ञानावृत शरीर तिनविषे प्रवेश करतेहैं । तथाच । × "इष्टापूर्तंमन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरञ्चाविशन्ति" । अरु जे कर्म कामना सहित किये जाते हैं सोई संसार का हेतु हैं । तथाच । * "आत्मैवेदमग्रआसीदेक एव सोऽकामत जाया मेस्यादथ प्रजायेयाथ वित्तंमेस्यादथ कर्मकूर्वी" । इत्यादि, अर्थ

× यह मुण्डक उ० के प्रथम मुण्डके द्वितीय खण्डकी १० श्रुति ॥
* बृ० उ० के अध्याय १ के ब्रा० ४ में ।

यह जो प्रथम ब्रह्मा अकेला आपहीके आपको वैभववान् होने के अर्थ स्त्री पुत्र वित्तादिकों की कामना करके कर्मकरने की इच्छा करता भया । ताते सकाम कर्म संसारप्रवृत्ति का हेतु है अरु संसारही अदर्शनात्मक अनात्मअन्धकार रूप अज्ञान है । तिस अनात्म अज्ञानमें प्रवेशहोय जिन कर्मोंसे सो कहिये अविद्या । ताते अविद्या जे सकाम अग्निहोत्रादि कर्म तिनका निरन्तर अनुष्ठान करनेवाले अविवेकी सो कामना के वशभये अपने आपको अन्धतममें प्राप्त करनेवाले आत्महत्यारे अज्ञानी वे प्रवेश करतेहैं ॥ अरु जे पुरुष ८। विद्याबिषे ९ । रतहैं १० । अर्थात् देवता ज्ञानकरके जे भेद उपासना करनेवाले जोकि वास्तवकरके देवताओंको अपनेसे अरु अपनेसे देवताओंको अन्य मानके उपासना करतेहैं। वे ११ । सकाम कर्म करनेवालों से भी १२ । अधिक १३ । ऐसे १४ । अन्धतममें १५ प्रवेशकरते हैं ॥ अर्थात् जो वास्तविक स्वरूपमें भेदमानके देवोपासना करनेवाले भेदी उपासक हैं तिनको वेद भगवान् ने पशु करके प्रतिपादन किया है। तथाच । † "अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव ᳪ देवानाम्" । ताते विद्या शब्दकरके जो भेद उपासना तिसके कर्त्ता जे भेदी उपासक कनिष्ठ अधिकारी हैं वे अत्यन्त अदर्शनात्मक अज्ञानावृत शरीरोंको प्राप्तहोतेहैं ॥ अथवा जे पुरुष लोकदृष्टिमात्रविद्या जोब्रह्मविद्या तिसबिषे रत भासतेहैं अरु कथन भी उसहीका करतेहैं परन्तु आत्मअभ्यास से रहित अन्तःकरण में नानाप्रकारकी विषयवासनाको चोरोंवत् छिपाय अन्तरमें लेरहे हैं अरु आपको ज्ञानवान् अकर्त्ता मानके इस असत्यज्ञान के आश्रय विहित अग्निहोत्रादि कर्म जोकि अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञान के साधन हैं तिनका त्याग करते हैं अरु निषिद्ध जे पान मैथुनादिकर्म तिनविषे अहर्निश प्रवृत्त रहते हैं। ऐसे जे अन्तरसे शिश्नोदरपरायण अत्यन्त अविवेकी बाह्य मुद्रासे ज्ञान विषे रत

† बृ० उ० के अ० १ के १० अनु० ॥

भासनेवाले पुरुष हैं वे स्वर्गादि सर्व उत्तम लोकों से भ्रष्ट होय अत्यन्त करके अदर्शनात्मक अन्धतम केवल अज्ञानावृत्त वृक्ष पाषाणादि किंवा श्वान शूकर कीट पतंग मशकादि शरीररूपी लोकबिषे प्रवेश करते हैं। तथाच। * "अथ य इह कपूयचरणा अभ्यासो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा॥ अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्व इति॥ तथाच † "कुशला ब्रह्मवार्त्तायां वृत्तिहीनाश्चयेनराः। न ते तत्पदमाप्स्यन्ति पुनरायान्तियान्तिच"॥ ९॥

तात्पर्य॥

पूर्व तृतीय मंत्र करके जे आत्महत्यारे कहे हैं वे इस नवम मंत्र करके विद्या अविद्याद्वारा दो प्रकारके कहके तिनके अर्थ अर्थात् कामुक कर्म करनेवाले अरु सर्वथा कर्मत्यागने वाले अत्यन्त अज्ञानी इनदोनों कनिष्ठ अरु अधम अधिकारियोंकी देह त्यागान्तर जो अन्धतम अरु अधिक अन्धतम लोककी प्राप्ति रूपी गति प्राप्तहोतीहै सो प्रतिपादन किया है। सो इसकहने से जे मोक्षार्थी मुमुक्षु हैं तिनको वेद भगवान् दयाकरके सूचना करते हैं जो अन्धतम अरु अधिक अन्धतम को प्राप्तकरने वाले ऐसे जे कामुक अरु निषिद्ध कर्म्म तिनको अशेष त्यागके निष्काम विहित कर्मोंद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धतापूर्वक आत्मअभ्यासही कर्त्तव्य योग्य है॥

सम्बन्ध॥

इसमंत्रबिषे कनिष्ट अरु अधमाधिकारीको विद्या अरु अविद्या करके अन्धतम अरु अधिक अन्धतमकी प्राप्ति प्रतिपादन किया। अब कहेवाक्यकी दृढ़ताके अर्थ वृद्धोंकी साक्ष्यपूर्वक वेदभगवान् आगे दशममंत्र को प्रतिपादन करते हैं॥ ॐ तत्सत्॥

---

* छां० उ० के ५ प्र० पंचाग्नि विद्याकी ७-८ वीं श्रुति॥
† पंचदशी ग्रंथबिषे॥

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्य देवाहुरविद्यया ॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

पदान्वयः ॥

विद्यया अन्यत् एव आहुः अविद्यया अन्यत् एव आहुः ये नः तत् विचचक्षिरे धीराणां इति शुश्रुम ॥

पदार्थ ॥

विद्याकरके [फल] अन्य ही कहते हैं [अरु] अविद्याकरके [फल] अन्य ही कहते हैं जे हमको कर्म तथा ज्ञान कहतेहुए [तिन] धीरपुरुषोंका वचन ऐसे श्रवण कियाहै ॥

भावार्थमन्त्र दशवें का ॥

हे सौम्य! विद्या करके १। फल अन्य २। ही ३। कहते हैं ४। अर्थात् विद्या का फल और ही है ऐसा कहते हैं। अरु अविद्या करके ५। फल अन्य ६। ही ७। कहते हैं ८। जो बुद्धिमान् पुरुष ९। हमको १०। कर्मज्ञानका ११ उपदेश करते हुये १२ तिन धीरपुरुषोंका वचन १३। ऐसे १४। श्रवणकिया है १५॥ अर्थात् जिन ज्येष्ठ श्रेष्ठ विद्वानों करके विद्या अविद्या अरु तिनके अधिकारी अरु तिनके फलका विस्तार विवेचनहुआ है तिन धीरपुरुषों का वचन ऐसा श्रवण किया है कि विद्याका फल और है अरु अविद्या का फल औरहै १० ॥

तात्पर्य ॥

इस मंत्रबिषे विद्याका फल और अरु अविद्याका फल और कहा है। अर्थात् विद्या के जे उपासक हैं अरु अविद्या के जे उपासक हैं तिन दोनोंको उपासना के अनुसार फल भिन्न २ दोदोप्रकार के हैं तहां एक२ प्रकारसे विद्या अरु अविद्याका फल अरु तिनके अधिकारी जोकि तृतीयमंत्रबिषे आत्महत्यारे करके कनिष्ठ अरु अधम कहे हैं सो कहां। अर्थात् अविद्या करके सकाम कर्म अरु तिनका फल अन्धतममें प्रवेश। अरु विद्याशब्दकरके भेदउपासना अथवा

असत्यज्ञान अरु तिसका फल अत्यन्त अन्धतम में प्रवेश कहा। इसप्रकार विद्या अविद्याशब्द का अर्थ तिनके फलाऽनुसार एक२ प्रकार का नवममंत्रकरके जो कहा है सो बड़ेधीर बुद्धिमान् पुरुष जे विद्या अविद्या के विभाग विवेचनकर्त्ता पूर्वभये हैं तिनके वचनोंद्वारा श्रवण किया है॥ अरु तैसेही धीरपुरुषों के वचनोंद्वारा विद्या अविद्या के उपासकों को तिनका फल और प्रकारभी श्रवण कियाहै सो आगे एकादश ११ वें मन्त्रकरके कहेंगे तातें यह जो दशममन्त्र है सो देहलीदीपकन्याय से नवम अरु एकादश इन दोनों मन्त्रों से सम्बन्ध रखताहै। क्यों कि इस मन्त्रमें विद्याका फल और अरु अविद्या का फल और कहाहै सो नवममन्त्रसे कहे प्रमाण कनिष्ठ अरु अधम अधिकारियों को तो एक २ निरूपण किया। अरु और एक २ प्रकारसे मध्यम अधिकारीके अर्थ विद्या अविद्या का स्वरूप अरु फल आगे एकादशवें मन्त्रकरके प्रतिपादन करते हैं॥

सम्बन्ध॥

इस मन्त्रमें विद्याकाफल अन्य अरु अविद्याकाफल अन्य कहा है तहां कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी को विद्या अविद्या अरु तिनका फल अन्धतम अरु अधिक अन्धतमप्राप्ति नवममंत्रकरकेकहा। अब अन्य जे मध्यम अधिकारी द्वितीयमंत्रद्वारा कहे हैं तिनकी विद्या अविद्या का स्वरूप अरु तिनका फल अथवा समुच्चय का फल आगे एकादशवें मन्त्र करके प्रतिपादन करते हैं॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह ॥ अ-
विद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ११ ॥

पदान्वयः॥

तत् उभयं विद्यां च अविद्यां च यः सह वेद अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतं अश्नुते ११ ॥

पदार्थ ॥

सो दोनों को विद्या पुनः [तिसकाफल] अविद्या पुनः [तिसकाफल] जोकोई एकसाध्य जानता है [सो] अविद्याद्वारा मृत्यु को तरके विद्याद्वारा अमृत को प्राप्तहोता है ॥

भावार्थ मन्त्रग्यारहवें का ॥

हे सौम्य ! जे द्वितीयमन्त्र से आत्मअभ्यासमें असमर्थ मध्यम अधिकारी सूचित कियेहैं । सो पुरुष १। दोनोंको २ अर्थात् विद्या को ३। अरु ४। तिसके फलको अरु। अविद्याको ५। अरु ६। तिसके फलको। अर्थात् विद्या कहिये देवता के स्वरूप आयतन प्रतिष्ठा आदिकोंके ज्ञानपूर्वक अहमग्रे अभेद उपासना अरु अविद्या कहिये अग्निहोत्रादि विहित निष्काम कर्म अरु इन दोनोंके फलको। जो कोई ७। एक पुरुषकरके अनुष्ठान योग्य ८। जानता है ९। अर्थात् जो पुरुष कथितप्रकारकी विद्या अविद्या को समुच्चय सेवन करता है सो पुरुष। अविद्याद्वारा १० मृत्यु को ११। तर के १२। विद्याद्वारा १३। अमरभाव को १४ प्राप्त होताहै १५॥ अर्थात् अग्निहोत्रादि विहित निष्काम कर्मरूपी अविद्या तिसके करने करके अकरण प्रत्यवायजन्य जो अशुभ योनिकी प्राप्तिरूप मृत्यु तिस से छूटके देवता के स्वरूपादिकोंके ज्ञानसहित जो अहं अग्रे उपासना तिस अभेद उपासनारूपी विद्याकरके देवताकेसाथ अभेदभावकी प्राप्तिरूपी जोअमरत्वभाव तिसको प्राप्तहोताहै११॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्रविषे "अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते" अविद्याद्वारा मृत्युसों तरके विद्याद्वारा अमरभाव को प्राप्त होता है। ऐसा प्रतिपादन कियाहै तहां अविद्या जे अग्निहोत्रादि विहित कर्म तिनके निष्काम करने से अन्तःकरण की मलिनतारूपी मृत्यु सों छूटके विद्या जो ब्रह्मविद्या तिस करके अमरभाव जो मोक्ष तिसकी प्राप्ति होती है ऐसा भी अर्थ ठीक है। परन्तु इस स्थानविषे सोई अर्थ यथार्थ है जो ऊपर व्याख्या किया

है क्योंकि अष्टादशवें मंत्रविषे अग्नि से मार्ग याचना कही है सो अग्नि की विद्याद्वारा उपासकके अर्थ है। अरु जे ब्रह्मविद्या-द्वारा ब्रह्मआत्मा के अभेद उपासक ज्ञानी सो मार्ग से रहित है क्यों जो ज्ञानी के प्राण अन्त समय देह से उत्क्रमण न होके। *"तत्रैव समवलीयन्ते"। जहां है तहांही अपने अधि-ष्ठानबिषे लीन होताहै। ताते यहां विद्या अविद्या शब्दका अर्थ जो प्रथम कहाहै सोई यथार्थ है तिसको पुनःकहते हैं। हे सौम्य! जे पुरुष अग्निकी विद्या के ज्ञानसे रहित केवल अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं सो देहत्याग के अनन्तर पितृलोकमें अपने कर्मों के फल भोगके पुनः ब्राह्मणादि वर्णत्रयी में से कहीं भी अपने कर्मानुसार उत्पन्न होय पुनः कर्महीं करते हैं। †"कर्मणा पितृ-लोकः"। ताते अविद्या जे अग्निहोत्रादि कर्म तिसकरके अकरण प्रत्यवायजन्य जे अशुभ योनियोंकी प्राप्तिरूप मृत्यु तिससे छूटते हैं। अरु विद्या जे पंचाग्नि वैश्वानर तृणाचिकेत आदि अग्नि-विद्या अथवा दहरादि विद्या तिन विद्याद्वारा देवताओंके स्वरू-पादिकों के ज्ञानपूर्वक जे अहं अग्रे अभेद उपासना सो विद्या तिस विद्याकरके ब्रह्मलोक किंवा अग्नि आदि देव भावकी प्राप्ति। × "विद्यया देवलोकः" सोई अमरत्व की प्राप्तिहै। ताते अभि-प्राय यह है कि जे कोई पुरुष अग्नि आदि विद्याके ज्ञानपूर्वक अहं अग्रे उपासना करतसन्ते अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं सो पुरुष विहित कर्मद्वारा अकरण प्रत्यवायरूप मृत्यु सों छूटके अग्नि आदिकों की विद्याद्वारा समष्टि देवभावको प्राप्त होते हैं। ताते इसमंत्रद्वारा विद्या अविद्याकरके कर्मउपासना के समुच्चय सेवन करनेवाले मध्यम अधिकारीको जो फल प्राप्त होताहै सो कहा अरु इस समुच्चय के आवान्तर विद्या अविद्या का स्वरूप अरु तिनका फल पृथक् २ भी सूचित किया है॥ ॐ तत्सत्॥

*--† छान्दोग्य उपनिषद् बिषे॥ × बृ० उपनिषद् बिषे॥

सम्बन्ध ॥

इस ११ ग्यारहवें मंत्रमें अरु ९ नवममंत्रमें विद्या अरु अविद्या का स्वरूप पृथक् २ प्रतिपादन किया है सो अधिकारी अरु फल वाक्यके भेद से किया है । तैसेही आगे बारहवें मंत्र से चौदहवें मंत्र पर्यन्त तीन मंत्र करके संभूति अरु असंभूतिकी उपासना भी अधिकारी अरु फलवादके भेदसे पृथक् २ प्रकार से प्रतिपादन करेंगे तहां प्रथम कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी जे तृतीय मंत्रकरके सूचित किये हैं तिनको आदि कार्य कारण जे संभूति अरु असंभूति तिनकी उपासनासे जो गति प्राप्त होती है सो वेद भगवान् आगे बारहवें मंत्रकरके प्रतिपादन करते हैं ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते । ततो भूय इव ते तमो यउसम्भूत्याꣳरताः १२ ॥

पदान्वयः ॥

ये असंभूतिम् उपासते [ते] अंधं तमः प्रविशन्ति ये उ संभूत्याम् रताः ते ततः भूय इव तमः [प्रविशन्ति]

पदार्थ ॥

जे असंभूति को उपासते हैं [सो] अदर्शनात्मक अज्ञान प्रति प्रवेशकरते हैं [अरु] जे कोई संभूति बिषे रत हैं सो तिससेभी अधिक ऐसे तममें [प्रवेश करते हैं] ॥

भावार्थ मंत्र बारहवेंका ॥

हे सौम्य ! जो पुरुष १। असंभूति की २। उपासना करते हैं ३। अर्थात् संभव कहिये उत्पत्ति है जिस कार्य की सो संभूति तिस कार्य रूपसे जे अन्यकारणरूप सो कहिये असंभूति जिसको प्रकृति अव्याकृत माया आदि नामसे कहते हैं सो काम कर्मादिकोंको उपजावनेवाली अन्धतम अविद्या तिसकी जो उपासना करते हैं सो पुरुषतारूपही । अदर्शनात्मक ४। अज्ञानअन्धकारबिषे ५। प्रवेश करते हैं ६। अर्थात् वारंवार कारणभाव को

ही प्राप्त होते हैं क्योंकि अविद्या का कार्य कामना तिसको अपने बिषे लेके सकाम कर्मोंकाही अनुष्ठान करते हैं सो अदर्शनात्मक अज्ञानरूप संसार में प्रवेश करते हैं ताते अपने बिषे नाना प्रकारों के शरीर उपजावने का कारण आपही होते हैं ॥ अरु जे ७। कोई पुरुष ८। संभूति बिषे ९। रत हैं १०। सो ११। तिससेभी १२। अधिक १३। ऐसे १४। तम में १५ ॥ प्रवेश करते हैं अर्थात् जे कोई अत्यन्त अविवेकी सकाम पुरुष हैं सो संभव है जिसका ऐसा जे आदि कार्यरूप हिरण्यगर्भ सो कहिये संभूति तिसकी जे सकाम उपासना करते हैं सो अधिकतर अदर्शनात्मक अज्ञान अन्धकार बिषे प्रवेश करते हैं। अर्थात् कार्यकी कार्यभाव से जे उपासना तिसकरके जडात्मक कार्यभावकोही प्राप्त होते हैं। अर्थात् प्रकृतिका कार्य हिरण्यगर्भ तिसका कार्य अणिमादि ऐश्वर्य्य तिस ऐश्वर्य की कामना से किया जे कार्य हिरण्यगर्भ की उपासना तिसकरके कार्यरूप जे रत्नादि जड़ ऐश्वर्य्य तिस भावको प्राप्त होते हैं ॥ अथवा हे सौम्य! नास्तिकवादी आत्माको असंभूतिमानके कहते हैं कि असंभव मृतकका पुनः संभवनहीं अर्थात् शरीरके नाश होतेही आत्माका नाश होताहै पुनः आत्मा कोई रहता नहीं कि जिसका पुनः संभव होय ताते आत्मा असंभूति है ऐसा निश्चय करते हैं हे सौम्य! सो पुरुष अत्यन्त अन्धतम जे श्वान शूकरादि शरीररूपी नरक तिसको प्राप्त होते हैं। अरु संभव [उत्पत्ति] है जिसकी ऐसा जो शरीर सो संभूति तिस संभूति नामक शरीरको आत्मामानके कहते हैं कि यह जो दृश्यमान शरीर है सोई आत्माहै। हे सौम्य! ऐसे जे देहात्मवादी अधमाधिकारी विरोचन की सम्प्रदायवाले चारवाकी सो देहत्यागके अनन्तर महाअन्धतम वृक्ष पाषाणादि जडभाव कोही वारंवार प्राप्त होते हैं १२ ॥

तात्पर्य ॥

जे कि तृतीय मंत्रमें कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी सकाम

कर्म अरु अशुभकर्म करनेवाले कहे हैं तिनके अर्थ कर्मानुसार अज्ञानावृत असुरलोकरूपी फल की प्राप्तिकहा। सो इस कहने से वेदभगवान् ने सूचना किया है कि जो सकाम अरु निषिद्ध कर्म हैं सो मध्यमाधिकारी मुमुक्षु को कर्त्तव्य नहीं अरु उत्तमाधिकारी मुमुक्षु पुरुषों को तो इन कर्मों का स्मरणमात्र भी कर्त्तव्य नहीं क्योंकि ये अनर्थ के हेतु हैं। अरु यही अर्थ पुनः वेद भगवान् ने नवम मंत्र करके प्रतिपादन किया है कि जिससे मुमुक्षु पुरुष भूल करके भी विद्या अविद्यारूप कामुक निषिद्ध कर्म अरु भेद भावनारूप उपासना तिनके समीप भी न जाय। अरु सोई अर्थ पुनः इस बारहवें मंत्र करके मुमुक्षु के अर्थ सूचनाकिया कि संभूति अरु असंभूति अर्थात् कार्य अरु कारण जे हिरण्यगर्भ अरु आदि प्रकृति तिनकी उपासना भी सकाम अरु भेदभाव से कर्त्तव्य नहीं क्योंकि सकाम कर्म अरु भेदभाव उपासना तिनके जे फल हैं सो सर्व नाशवान् जड़ हैं ताते सोई अदर्शनात्मक अन्धतम हैं ताते आदि प्रकृति जे सर्व देवादिकों का आदिकारण कि जिसकी उपासना से त्रैलोक्य की सर्व विभूति प्राप्त होती है तिसकी उपासना भी सकामतासे मुमुक्षुको सर्वथा कर्त्तव्य नहीं। अरु जे कोई प्रकृतिआदि देवताओंकी सकाम उपासना करते हैं सो अन्त में अन्धतमको प्राप्त होते हैं॥ ताते वेद भगवान् ने इस मंत्रसे मुमुक्षु को केवल काम्य कर्म अरु भेदभावना आदि अशुभ आचरणों से हटावने के अर्थ कामुककर्म अरु भेद उपासना की निंदा किया है। अरु तृतीय नवम द्वादश इन मंत्रोंसे त्रिवाक्यता करके आग्रह सहित वेदने कामुक कर्म अरु भेद उपासना तिसका फल अन्धतम असुरलोक प्राप्ति कहके तिनके कर्त्ताको आत्महत्यारे सूचितकिये कि जिससे मुमुक्षु आदि विवेकी पुरुष सकाम कर्म अरु भेदभावनाके सम्मुख न होय॥ अरु जे अविवेकी पुरुष अपनी रक्षा में असमर्थ कामुक निषिद्ध कर्म अरु भेद भावनाके कर्त्ता आत्म-

हत्यारे हैं तिनको परिणाममें श्वान शूकर वृक्ष पाषाणादि नीच गतिकी प्राप्ति देखाय वेद भगवान् ने कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी का प्रकरण समाप्त किया ॥

सम्बन्ध ॥

इस मंत्र बिषे असंभूति अरु संभूति शब्द करके मूलप्रकृति आदि कारण अरु हिरण्यगर्भ आदि कार्य जो जगत्रूपी वृक्षका आदि बीज अरु आदि अंकुर है सो कहा अरु उनकी भी सकाम अरु भेदभाव उपासना से अन्धतमादि प्राप्ति देखाय मुमुक्षु को कामना अरु भेदभावना से हटाया। अरु कनिष्ठ अधमाधिकारी का प्रकरण समाप्त किया॥ अब आगे तेरहवें मंत्रमें संभूति की उपासना का फल अन्य अरु असंभूति की उपासना का फल अन्य अर्थात् दो प्रकारका है तिनको वृद्धोंकी साक्ष्यपूर्वक देहली दीपक न्यायवत् पूर्वोत्तर मंत्रसे सम्बन्ध करते तेरहवें मंत्र को प्रारंभ करते हैं ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे १३ ॥

पदान्वयः ॥

सम्भवात् अन्यत् एव आहुः असम्भवात् अन्यत् आहुः ये नः तत् विचचक्षिरे तेषां धीराणां इति शुश्रुम १३ ॥

पदार्थ ॥

संभूतिकरके [फल] अन्य ऐसा कहते [अरु] असंभूतिकरके [फल] अन्य कहते जे हमको संभूति असंभूतिफल कहतेहुए [तिन] धीरपुरुषोंका [वचन] ऐसे श्रवणकियाहै ॥

भावार्थ मन्त्र तेरहवें का ॥

हे सौम्य! संभूति की उपासना से १। फल और है २। निश्चय ३। कहते हैं ४। अरु असंभूति की उपासनासे ५। फल और है ६। ऐसाकहते हैं ७। अर्थात् संभूतिकी उपासना का फल औरहै अरु

असंभूतिकी उपासनाका फल और है निश्चय से ऐसा कहते हुए। जे ८। हमको ९। उस संभूति असंभूति अरु तिनके फलादिकोंका १०। उपदेश करतेभये ११। तिन धीरपुरुषों का वचन १२। इसप्रकार १३ श्रवणकिया है १४॥ अर्थात् जिन विद्वान् वृद्धोंकरके उन संभूति असंभूतिका स्वरूप उपासना अधिकारी फल आदिकों का विस्तार विवेचन कियागया है तिन धीरपुरुषों का वचन इतना इसप्रकार श्रवणकिया है १३॥

तात्पर्य॥

इसमंत्रबिषे संभूतिकी उपासनाका फल और असंभूति की उपासनाका फल और है ऐसा प्रतिपादन कियाहै। अर्थात् संभूति अरु असंभूतिके उपासकोंको फल भिन्न २ दो २ प्रकारके हैं ऐसा निश्चय कहाहै तहां जे कनिष्ठ अरु अधम अधिकारी सकाम उपासकहैं तिनको संभूति असंभूतिकी उपासनाका फल अन्धतम अरु अधिक अन्धतमकी प्राप्तिहै ऐसा एकप्रकारसे बारहवेंमंत्रकरके प्रतिपादनकियाहै॥ अरु दूसरीप्रकार से मध्यम अधिकारी जे आत्मअभ्यासमें असमर्थहुए संसारके क्लेशोंकी निवृत्तिकेअर्थ निष्कामतासे संभूति असंभूतिकी उपासनाकरनेवाले हैं तिनको उपासनाके अनुसार मृत्युसेछूटना अरु अमरत्वप्राप्ति रूपी फल सो आगे चौदहवें मंत्रसे प्रतिपादनकरेंगे। ताते संभूति असंभूतिकी उपासनाका फल सकामता निष्कामताके आश्रय भिन्न २ होता है इसप्रकारका निश्चयपूर्वक बड़े धीर विद्वान् वृद्धपुरुषोंका वचन श्रवणकियाहै। हे सौम्य! इसप्रकार यह विद्या एकके समीपसे दूसरेको प्राप्त होती है। यह जो तेरहवां १३ मंत्र है सो देहलीदीपकन्यायवत् बारहवें अरु चौदहवें इन दोनोंमंत्रों से सम्बन्धकरता है तहां एकप्रकारसे संभूति असंभूतिकी उपासनाका फल कनिष्ठ अधमाधिकारीके अर्थ १२ वें मंत्र में कहा है अरु दूसरी प्रकारसे मध्यम अधिकारीके अर्थ १४ वें मंत्रसे प्रतिपादन करते हैं॥

सम्बन्धमन्त्र तेरहवेंका ॥

इस मन्त्र करके संभूति असंभूति की उपासना के फल भिन्न २ दो २ प्रकार से सूचना किये हैं तहां एक प्रकार से १२ वें मंत्र से कहके द्वितीय प्रकार से कहने के अर्थ १४ वें मंत्र का प्रारम्भ करते हैं ॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳसह । विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥ १४ ॥

पदान्वयः ॥

यः तत् उभयं सम्भूतिं च विनाशं च सह वेद [सः] विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्या अमृतं अश्नुते ॥

पदार्थ ॥

जो पुरुष सो दोनों असम्भूति पुनः सम्भूतिको एक जानते हैं [सो] सम्भूतिकरके मृत्युको तरके असम्भूतिकरके अमृतको प्राप्त होते हैं ॥

भावार्थ मन्त्र चौदहवेंका ॥

हे सौम्य ! जो पुरुष द्वितीय मंत्रकरके कहे आत्म अध्यास में असमर्थ मध्यमाधिकारी १। सो पुरुष २। दोनों को ३। अर्थात् संभूतिशब्द करके * असंभूतिको ४। अरु ५ विनाश शब्द करके संभूति को ६-७। अर्थात् असंभूति सो आदिकारण प्रकृति अरु विनाश सो संभूति आदिकार्य हिरण्यगर्भ इन दोनों को। एक करके ८। जानता है ९। अर्थात् एकही पुरुष असंभूति अरु संभूतिको अरु तिनके फलको एक जानके निष्कामतासे दोनों को समुच्चय सेवन करता है सो पुरुष। विनाशधर्मा जो कार्य संभूति हिरण्यगर्भ तिसकी उपासना से १०। अनैश्वर्यरूपी मृत्यु को ११। तरके १२। पुनः असंभूति जो आदिकारण प्रकृति तिस

* श्रीशंकराचार्य ने सम्भूतिका अर्थ असम्भूति अरु विनाशका अर्थ सम्भूति किया है ॥

की उपासना से १३। अमृत को १४। अर्थात् प्रकृतिलय लक्षण रूपको प्राप्त होता है १५।१४॥

तात्पर्य ॥

इस मंत्र विषे ।"विनाशेन मृत्युंतीर्त्वासंभूत्याऽमृतमश्नुते"। ऐसा प्रतिपादन किया है तहां विनाश धर्म है जिसका ऐसा जो संभूतिरूप कार्य्यब्रह्म हिरण्यगर्भ सर्वसूक्ष्म शरीरों की समष्टिता परिणाममें प्रकृतिविषे लय होनहार ताते विनाशी तिस हिरण्य-गर्भकी उपासनासे अनैश्वर्यरूपी मृत्युसों तरके। अर्थात् हिरण्य-गर्भकी उपासना से अणिमादि ऐश्वर्य्यरूपी फलकी प्राप्तिहै सो उपासनाका असाधारण फलहै सो हिरण्यगर्भके निष्काम उपा-सकपावतेहैं। तिसकी प्राप्तिसे दारिद्र्यआदि अनैश्वर्यरूपीमृत्युसे तरजाते हैं॥ अरु असंभूति कहिये नहींहै संभव (उत्पत्ति) जिसका ऐसी जो संभव से रहित आदिकारण प्रकृति जो कि चैतन्य पर-मात्मा की सत्ता पाय सूक्ष्म स्थूलादि सर्व ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करनेवाली तिसकी जे निष्काम उपासना करतेहैं सो परिणाममें देहत्यागानन्तर प्रकृतिलयलक्षणरूप अमृतको प्राप्तहोतेहैं। अर्थात् वे पुरुष पुनः कार्यभावको प्राप्त नहीं होते सोई उनको अमरत्व प्राप्ति है। एतदर्थ इस मंत्रविषे विनाशशब्द करके संभूति आदि कार्य हिरण्यगर्भ को कहा अरु असंभूति शब्द करके अव्याकृत आदिकारणको कहा। इन दोनों की समुच्चय उपासना करने वाले मध्यम अधिकारी तिनको जो फल प्राप्त होताहै सो कहा। अरु इस समुच्चय के अवान्तर संभूति असंभूति का स्वरूप अरु तिनकी उपासना का फल पृथक् २ भी सूचित किया। अरु १२ वें मंत्रसे १४ वें मंत्र पर्यन्त संभूति असंभूति का स्वरूप अरु तिनकी उपासना का फल पृथक् २ सूचनकिया है तहां १२ वें मंत्रमें सकाम भिन्न भावसे उपासनाका फल कनिष्ठ अधमा-धिकारी के अर्थ अन्धतम अरु अधिकअन्धतम प्राप्ति कहा है। अरु इस १४ वें मंत्र करके संभूति असंभूति की निष्काम अ-

भेद उपासना का फल मृत्युसे तरना अरु अमरभाव की प्राप्ति प्रतिपादन करके मध्यम अधिकारी की उपासना का प्रसंग वेद भगवान् ने यहां समाप्त किया। इस उत्तरार्ध में नवम से चतुर्दशवें मंत्र पर्यन्त मध्यम अरु कनिष्ठ अधमाधिकारी की उपासनाका प्रसंग प्रतिपादन कियाहै तहां कनिष्ठ अधमाधिकारीको कामुक अरु निषिद्ध कर्मों का फल विद्या अविद्याद्वारा अन्धतम अरु अधिक अन्धतम की प्राप्ति नवम मंत्रकरके कहा अरु उनहीं के अर्थ संभूति असंभूति की उपासना का फलभी अन्धतम अरु अधिक अन्धतमही बारहवें मंत्र करके प्रतिपादन किया। अरु मध्यम अधिकारी को निष्काम विहित सज्ञात कर्मका फल विद्या अविद्याद्वारा मृत्युसे तरना अरु अमरत्व यह एकादशवें मंत्रकरके प्रतिपादन किया। अरु उनहीं के अर्थ निष्काम सज्ञात संभूति असंभूतिकी अभेद उपासनाका फल मृत्युसे तरना अरु अमरत्व प्राप्ति चतुर्दशवें मंत्र करके प्रतिपादन किया। अरु दशम त्रयोदश इनदोनों मंत्रोंको मध्यमें वृद्धों के वाक्योंके सम्बन्धार्थ प्रतिपादन किया। तातें नवम से चतुर्दशवें मंत्र पर्यन्त कनिष्ठ अधमाधिकारी अरु मध्यमाधिकारी का प्रसंग वेद भगवान् ने प्रतिपादन किया॥ अब एकादशवें मंत्रमें कहाहै कि "विद्ययाऽमृतमश्नुते" विद्या करके अमरभाव को प्राप्त होतेहैं सो कौन २ विद्याकरके कौन २ उपासनाद्वारा कौन २ अमरभाव की प्राप्ति मध्यमाधिकारी को प्राप्त होती है सो संक्षेपमात्र चार मंत्रसे प्रतिपादन करतसंते वेदभगवान् इस उपनिषद्को पूर्णकरतेहैं॥ ॐ तत्सत्॥

सम्बन्ध॥

इसमंत्रमें मध्यम अधिकारीको संभूति असंभूतिकी निष्काम अभेद सज्ञात उपासनाका फल मृत्युसे तरना अरु अमरभावकी प्राप्ति निरूपण करके मध्यम अधिकारी उपासककी संभूति असंभूतिकी उपासनाद्वारा परिणामगतिका प्रकरण समाप्त किया॥ अब आगे मध्यम अधिकारीकोही विद्याके आश्रय उपासनाद्वारा

अमरभावकी प्राप्ति जैसे होती है सो निरूपणकरैंगे। तहां प्रथम सूर्यभगवान्द्वारा जे सत्यपरमात्माके उपासक हैं तिनकी अपने उपास्य देवसे मार्गयाचना पंचदशवें मंत्रकरके वेदभगवान् प्रतिपादनकरतेहैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये १५ ॥

पदान्वयः ॥

हे पूषन् सत्यस्य मुखं हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितं तत् त्वं सत्यधर्माय दृष्टये अपावृणु १५ ॥

पदार्थ ॥

हे पूषा सूर्य ! सत्य परमात्माका द्वार तेजोमय पात्रकरके आच्छादित है तिसको तुम सत्यधर्मा मुझ को दर्शनके अर्थ खोल दो १५ ॥

भावार्थमन्त्रपन्द्रहवेंका ॥

हे सौम्य!जेकोई एकपुरुष सूर्यभगवान्द्वारा प्रत्यगात्माके उपासकहैं सो अपनेको अमृतत्वप्राप्तिके अर्थ अपने उपास्य सूर्यभगवान्से परमात्माके दर्शनार्थ अभिलाषाकरतसंते प्रार्थनाकरे हैं कि ॥ हे जगत्के पोषणकर्त्ता सूर्य!१। तुम्हारे मंडलविषे जो सत्यपरमात्माहै तिसका २। दर्शनद्वार ३। सो तुम्हारे तेजोमय ४। पात्रकरके ५। अर्थात् बिम्बकरके आच्छादित है ६। तिसको ७। तुम ८। सत्यधर्माको ९। अर्थात् सत्यस्वरूप जे तुम तिसकी यथोचित उपासना से सत्यधर्मा जो मैं तिस मुझको। देखने के अर्थ १०। खोलदेवो ११ ॥ अथवा हे सर्व के पोषणकर्त्ता सूर्य! सत्यस्वरूप जो सर्वान्तर प्रत्यगात्मा तिसके दर्शनका जो मुखद्वारा शुद्ध अन्तःकरण सो हिरण्मय पात्रकरके। अर्थात् सुवर्णादि द्रव्य विषयक लोभात्मक वृत्तिकरके। आच्छादितहै तिसको तुम मुझसत्यधर्माको दर्शनके अर्थ खोलदेवो। अर्थात् तुमहींको सत्यदेव जान के

तुम्हारीही स्तोत्र नमस्कारादि द्वारा यथोचित आराधना करनेवाला याते सत्यधर्मा ऐसा जो मैं तिसको अपने हृदयस्थ स्वयंप्रकाश अन्तर्यामी प्रत्यगात्मा तिसको साक्षात् आत्मत्वसे अनुभव करने के अर्थ उस लोभात्मकादि अशुभ वृत्तियोंको अनुग्रहकरके दूरकरो यही आपसे मेरी प्रार्थना है १५ ॥

तात्पर्य ॥

इस मंत्र से सूर्य भगवान् द्वारा प्रत्यगात्माकी उपासनावाले को वेदवाक्यसे सूर्यकी उपासना करतसन्ते अन्तरसे उपास्यदेव आगे अमरत्व आत्मा की प्राप्त्यर्थ याचना कर्तव्य प्रतिपादन किया है। तैसेही अन्य देवताओं के उपासकों को भी जिसकी वेदोक्त उपासना होय तिस देवतासे अमृतत्व आत्माकीही प्राप्ति याचना कर्त्तव्य है कि जिसकरके परिणाममें परमशान्त अमृतत्व की प्राप्तिहोय। यह सूचना किया ॥ और सर्व मनुष्यमात्रने भी कर्मउपासना करके स्वस्वरूप के सम्यग् बोधार्थही प्रार्थना कर्त्तव्यहै नतु विषयार्थ जो कि अन्धतम प्राप्तिके हेतुहैं ॥

सम्बन्ध ॥

इस मंत्रविषे सूर्यभगवान् की प्रत्यक् उपासना देखाय उपासकको अपनेआप आत्मा के सम्यग्बोधार्थही उपास्यदेव से याचना कर्त्तव्य सूचितकिया। अब अहमग्रे उपासनाकी रीति से सूर्यकी प्रार्थनाके अर्थ १६ वें मंत्रका प्रारम्भ करते हैं ॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह। तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

पदान्वयः ॥

हेपूषन्! हे एकर्षे! हेयम! हेसूर्य! हे प्राजापत्य! रश्मीन् व्यूह तेजः समूह [एकीकुरु] यत् ते कल्याणतमं रूपं तत् ते पश्यामि यः असौ पुरुषः सः असौ अहम् अस्मि ॥

पदार्थ ॥

हे पोषणकर्त्ता[१]! हे एकचलनेवाले[२]! हे सर्वकेसंयमनकर्त्ता[३]! हे सर्व[४] रसकेस्वीकारकर्त्ता! हेप्रजापतिकेपुत्र[५]! [सो]अपनीकिरणोंको[६]दूरकरो[७] ताप[८]के समूहको[९] [एकत्रकरो] [१०]जो तुम्हारो[११] कल्याणतम[१२] रूप[१३]है तिस[१४]को तुम्हारेप्रसादसे[१५] मैं देखताहौं[१६] जो यह[१७] [तुम्हारेबिषेपूर्ण] पुरुष[१८]है सो[१९]ई यह[२०] मैं[२१] हौं[२२] ॥

भावार्थमंत्रसोलहवेंका ॥

हे सौम्य! अब सूर्यभगवान्का जो अहमग्रे उपासना करनेवाला उपासक है सो सूर्यभगवान् से प्रार्थना करता है कि हे सर्व के पोषणकर्त्ता पूषा!१। हे एकचलनेवाले! २। अर्थात् आकाशमण्डल में चलनेवाले जे ग्रहादिक तिनका अधिपति एक ताते "एकर्षे"। हे संयमनकर्त्ता!३। अर्थात् सर्व प्राणधारियों को अपने २ नियममें रखनेवाला न्यायकर्त्ता यम। हे सूर्य! ४। अर्थात् सर्वरसजातिको अपनेबिषे अपनी किरणोंद्वारा स्वीकारकर्त्ता। हे प्रजापतिके पुत्र!५। अर्थात् संवत्सरात्मक कालमूर्त्ति। अपनी किरणोंको ६। दूरकरो ७। अरु अपने तापकतेजके ८। समूहको ९। एकत्रकरो कि जिसकरके। जोकि १०। तुम्हारा ११। कल्याणतमरूप है १२-१३। अर्थात् जो तुम्हारा अतिशोभन परमशान्त आनन्दघन निराकार कल्याणतमरूपहै। तिसको१४। तुम्हारे प्रसाद करके १५। मैं देखताहौं १६। जो यह १७। तुम्हारे बिषे चैतन्यपुरुष है १८। सोई १९। यह २०। अर्थात् जो यह प्राणबुद्ध्यादि संघात बिषे पूर्ण चैतन्य पुरुष है सो। हम २१। हैं २२ ॥ १६ ॥

तात्पर्य ॥

इस मन्त्रबिषे जे सूर्यभगवान्के विशेषण कहेहैं सोसर्व सूर्यस्थ चैतन्यपुरुषके कहेहैं। अरु जो सूर्यस्थ चैतन्यपुरुषहै सोई प्राणबुद्ध्यादि सर्वसंघातस्थ चैतन्यहै ताते जे विशेषण सूर्यस्थचैतन्यकेहैं सोई प्राणस्थ चैतन्यकेहैं तिसको श्रवणकरो। हे सौम्य! जैसेचैतन्य

पुरुष सूर्य साथ मिलके वृष्टि आदि द्वारा जगत्का पोषण करता है तैसेही प्राण साथमिलके अन्नादिकों के रसद्वारा शरीररूपी जगत्का पोषणकरता है। अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्य्य साथ मिल के सर्व ग्रहादिकों में श्रेष्ठता ते एक आकाश में चलनेवाला है तैसे ही प्राणद्वारा मनआदि सर्व में श्रेष्ठताते एक हृदयाकाश में विचरने वाला है। अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्यद्वारा सर्व ब्रह्माण्डको अपने २ नियममें राखतसंते सर्वका द्रष्टा साक्षी है। तैसेही प्राणद्वारा शरीररूपी ब्रह्माण्ड बिषे सर्व इन्द्रियादिकों को अपने २ नियम में राखत संते सर्वका द्रष्टा साक्षी है। अरु जैसे चैतन्य पुरुष सूर्यद्वारा सम्पूर्णरसजाति को अपने बिषे स्वीकार करता है। तैसेही प्राणद्वारा सर्वअन्नादि रसोंका भोक्ताहै "। अत्ता चराचरग्रहणात् "। "। प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नंचतुर्विधम् "। अरु जैसे चैतन्यपुरुष सूर्यद्वारा प्रजापतिका पुत्र कहावता है। तैसेही प्राणद्वारा मिलके लिंग अथवा वीर्य्यद्वारा पिताकापुत्र कहावता है। "आत्मावै जायतेपुत्रः" ताते जो एक चैतन्य पुरुष सूर्य अरु प्राणरूपी उपाधि साथमिलके अधिदैव अरु अध्यात्मभाव को प्राप्तभया है सो चैतन्य वास्तव स्वरूप करके उभय स्थानों में एकही है इसही हेतुसे अहमग्रे उपासनाकरनेवाला पुरुष अपने उपास्य सूर्य भगवान् से प्रार्थना करताहै कि हे सूर्य ! तुम अपनी किरणोंको दूरकरो अरु अपनेतापक तेजकोलयकरो कि जिसकरके तुम्हारे वास्तविक परमकल्याणरूप चैतन्यपुरुषको अपना आप आत्माकरके अनुभव करताहौं क्यों कि सोई चैतन्यपुरुष मैंहौं ॥ अथवा हे सूर्यस्थपुरुष परमसूर्य! इस शरीर में जो प्राणरूपी सूर्य है तिसकी प्राणापानादि भेदसे नानाप्रकार की प्रसरित वृत्तिरूपीकिरणें तिसको तुम अपने अनुग्रह करके हृदयाकाश बिषे एकत्रकरो कि जिसकी एकतासे प्राणहीबिषे प्रकाशित जे परम चैतन्य प्राणका भी प्राण तिसको साक्षात् अपना आप अनुभव करें क्योंकि वास्तवकरके श्रुतियों के तत्त्वमस्यादि प्रमाण से

अरु अपने आप यथार्थ अनुभवसे जो सम्पूर्ण चराचर जगत् में परिपूर्ण ताते पुरुष अथवा सर्व शरीररूपी पुरबिषे किंवा पुरीतती नाड़ीबिषे शयन करनेवाला ताते पुरुष । अर्थात् सर्व शरीरों बिषे सुषुप्तवत् निर्विकल्प अक्रिय परमशान्त है ताते सर्व शरीरों रूपी पुरबिषे सोवनेवाला याते पुरुष । सोई सर्वव्यापी अक्रिय परमशान्त विज्ञानघन चैतन्य मैं हौं । हे सौम्य ! इसप्रकार सूर्यभगवान् द्वारा परमात्माका अहमग्रे उपासना करनेवाला उपासक है सो उपास्य देव साथ अपने आप आत्मा की अभेदता को अनुभव करे है सो मध्यम अधिकारी कहे प्रकार उपासना करतसंते देहत्यागान्तर सूर्य्य मण्डलस्थ चैतन्य पुरुष साथ अभेद होय अमृतत्वको प्राप्तहोता है ॥

सम्बन्ध ॥

इस १६ वें मंत्रबिषे अहमग्रे उपासनावाले उपासक को उपास्यदेवसाथ अभेदतारूप अमृतत्वप्राप्ति देखाया ॥ अब अहमग्रे उपासनावाला उपासक अपने मरणकालमें मोक्षार्थ अपने उपास्यदेवसे प्रार्थना अरु मनको शिक्षाकरता है सो सत्रहवें मन्त्रकरके प्रतिपादन करते हैं ॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् । ॐ क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर ॥ १७ ॥

पदान्वयः ॥

अथ वायुः अनिलम् अमृतम् इदं शरीरं भस्मान्तम् [भूयात्] हे क्रतो ॐ स्मर कृतं स्मर । क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥ १७ ॥

पदार्थ ॥

अब इसकालमें प्राणवायु सूत्रात्माको [अरु] लिंगशरीर [अपने कारणको] यह शरीर अन्तभस्मभावको [प्राप्तहो] हे मन ! ॐकारको स्मरणकरो [अरु] कर्मको स्मरणकरो । द्विवचन प्रणवउपासनाके आदरार्थ है ॥ १७ ॥

भावार्थमन्त्रसत्रहवेंका ॥

हे सौम्य ! पूर्वकहे प्रकार सूर्यभगवान्की अहमग्रे उपासना वाले उपासक हैं सो यावत् आयुष्य तावत् समाहितचित्त होके उपासना करते हैं सो जब उनका मरणकाल निकट आवता है तब अपने उपास्यदेव आगे प्रार्थना करताहै कि हे सूर्यभगवान् ! इसकाल में १। प्राणवायु २। अर्थात् इस उपस्थितकाल में मरणको प्राप्तहोता जो मैं तिस मेरे शरीरस्थ जो प्राणवायुहै सो। अनिल ३। अर्थात् सर्वात्मावायु (सूत्रात्मा) तिसको प्राप्तहोय। अरु यह ४। लिंगशरीर ५। अर्थात् जो शरीर स्वप्न अरु परलोकके भोगोंका भोक्ता है सो अपने कारणभावको प्राप्तहोय। अरु यह शरीर ६। अर्थात् यह दृश्यमान स्थूल अस्थिमांसमय शरीरनामसे जो सावयवपिण्ड है सो। अन्त में भस्महोय ७। अर्थात् प्राणउत्क्रामणके पश्चात् आहुतिवत् अग्निमें हवनकिया भस्महोय। हे सौम्य ! यहां पर्यन्त अर्थात् इसमन्त्रके पूर्वार्धपर्यंत सूर्यभगवान्की अहमग्रे उपासनाके बलसे उपासक अपने उपास्यदेवकी प्रार्थनाकरके अमृतत्वको प्राप्तहोता है सो निरूपण किया ॥ अब आगे इसमन्त्रके उत्तरार्ध करके प्रणवके उपासक को अन्तकालमें प्रणवका स्मरणकरना सूचित करतेहैं। हे सौम्य! जो पुरुष समाहितचित्त होके शरीरावसानपर्यन्त त्रिमात्रिक प्रणवकी उपासना करता है सो पुरुष अपने देहावसानसमये अपने मनसे कहता है कि हे "क्रतो" संकल्पविकल्पके कर्त्ता मन १। ॐकारको २। स्मरणकरो ३। अर्थात् जिसकाल के साधनेकेअर्थ यावत् आयुष्य प्रणवकी उपासना कियाहै सो काल अब उपस्थित है ताते ॐकारको स्मरणकरो कि जिसके प्रभाव से ब्रह्मलोकमें ब्रह्माद्वारा त्रिमात्रिक प्रणवका उपदेशपाय अमृतत्वको प्राप्तहोवोगे ताते हे मन!अब इसकाल में अपने कल्याणार्थ ॐकारका स्मरणकरो॥ अरु हे मन ! अपने किये कर्मकोस्मरणकरो ४-५। अर्थात् प्रणवोपासनाकरतसंते तू ने अग्निहोत्रादि

विहित निष्कामकर्म जो कि निषिद्धकर्मको नाश करके अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा प्रणवोपासना में सहायकभये हैं तिन कर्मों कोभी स्मरणकरो ॥ इसमंत्रमें स्मरणार्थ द्विवाक्यता है सो प्रणवोपासनाके आदरार्थ है ॥ १७ ॥

तात्पर्य ॥

इसमंत्रके पूर्वार्धमें कहा है कि सूर्यकी अहमग्रे उपासनाकरनेवालेहैं सो शरीरांतकालमें अपने उपास्यदेवकी प्रार्थना करतेहुये अमृतत्वको प्राप्तहोते हैं तब उसकालमें उसके प्राण सूत्रात्मा में लयहोतेहैं । अरु अमर जे लिंगशरीरहैं अर्थात् विना यथार्थ आत्मज्ञानके अन्य किसीप्रकारभी लिंगका नाश नहीं ताते लिंगको अमरकहतेहैं। तथाच" द्वेवावब्रह्मणोरूपे मूर्त्तञ्चैवामूर्त्तञ्च मर्त्यञ्चामृतञ्च" सो लिंग सूक्ष्म इन्द्रियादिकोंका संघातहै कि जिसकरके स्वप्नमें दर्शन श्रवणादिक्रियाहोतीहै तिसलिंगबिषे जे सूक्ष्म देवांशहैं सो अपने २ समष्टि देवतासाथ एक होते हैं सो देवांश अपने समष्टिदेवताबिषे गये फेर नहीं आवते क्योंकि वह उपासक अपने उपास्यदेवगत चैतन्यपुरुषसाथ अभेदहोता है ताते पुनः उसको स्थूलशरीररूपी क्षेत्रनहींहोता इसहीसे उसकी इन्द्रियां फेरआवतीनहीं । अरु यह जो स्थूलशरीर है सो परिणाम में अग्निविषे हवनकिया अपने कारणभावको प्राप्तहोताहै । हे सौम्य ! इसप्रकार जब विद्वान् उपासककी स्थूल सूक्ष्म सर्वउपाधि अपने २ कारणभावको प्राप्तहोती है तब तिसबिषे उपपन्नथा जो चैतन्यपरमात्माका आभास जीव कि जिसको उपाधिके सम्बन्धसे अल्पज्ञतादिसंज्ञा प्राप्तभईथी सो अपने उपास्यदेवगत सत्य चैतन्यपुरुषरूपी बिम्ब कि जिसको अपनेआप आत्मत्व से अनुभव कियाहै तिससाथ भेदसेरहित अभेद ऐक्यताको पावता है सोई विद्वान् उपासकको परमअमृतत्वकी प्राप्ति है कि जिस प्राप्तिसे पुनःअविद्याजन्य दुःखमय नाशरूप उपाधिको प्राप्त होता नहीं । ताते मध्यमअधिकारी इसप्रकार अहमग्रे उपासनाकरके देहत्यागान्तर

अमृतभावको प्राप्तहोय आवागमनसे रहितहोता है ॥ अथवा जे सूत्रात्मा समष्टिप्राणके व्यष्टिप्राणद्वारा अहंअग्रे उपासनाकरने वाले उपासक हैं सो अपने देहत्यागान्तर अपने उपास्य देव सूत्र आत्माके साथ अभेदहोते हैं सोई उन मध्यमाधिकारी को वर्कादि प्राणविद्याद्वारा अमृतत्वकी प्राप्तिहै ॥ अरु इस मंत्र के उत्तरार्ध में प्रणवकी उपासनाकरनेवाले के अर्थ वा सर्वको अपने २ शरीर त्यागने के समय ॐकारका स्मरणकरना द्विवाक्यताकरके वेदने कहा है तिसकरके प्रणवोपासनाकी श्रेष्ठता देखाई है ताते सर्व पुरुषों को अपने २ देहावसानसमये ॐकारका स्मरण अवश्यही कर्तव्ययोग्यहै ॥

सम्बन्ध ॥

इस मंत्र के पूर्वार्द्ध से सूर्य भगवान् अथवा सूत्रात्मा की अहं अग्रे उपासनाद्वारा अमृतत्वप्राप्तिप्रतिपादनकिया अरु उत्तरार्ध करके प्रणवकेस्मरणद्वारा अमृतत्वप्राप्ति प्रतिपादनकिया । अब आगे अग्निके उपासकको अमृतत्वप्राप्ति १८ वें मंत्रसे प्रतिपादन करतसंते ग्रंथकी पूर्णताकरते हैं ॥ इति सम्बन्धः ॥ ॐ तत्सत् ॥

अग्ने[2] नय[9] सुपथा[8] राये[7] अस्मान्[6] विश्वानि[3] देव[1] वयुनानि[4] विद्वान्[5] युयोध्य[13]स्मत्[10] जुहुराण[11]मेनो[12] भूयिष्ठां[15] ते[14] नमउक्तिं[16] विधेम[17] ॥ १८ ॥

इति ईशावास्योपनिषद् । ॐ तत्सत् ॥

पदान्वयः ॥

हे देव[1]! हे अग्ने[2]! विश्वानि[3] वयुनानि[4] विद्वान्[5] अस्मान्[6] राये[7] सुपथा[8] नय[9] अस्मत्[10] जुहुराणं[11] एनः[12] युयोधि[13] ते[14] भूयिष्ठां[15] नमउक्तिं[16] विधेम[17] ॥ १८ ॥ इति पदान्वयः ॥ ॐम् ॥

पदार्थ ॥

हे प्रकाशात्मकदेव[1]! हे अग्नि[2]! सर्व[3] कर्मको[4] जानतेहौ[5] हम[6] कर्मकर्त्ताओंको कर्मफलके[7] अर्थ शोभनमार्ग[8] से प्राप्तकरो[9] [अरु] हमारे[10]

कुटिलवचनात्मक[11] पापको[12] विनाशकरो[13] तुम्हारेअर्थ[14] बहुतसे[15] नमस्कारवचन[16] विधानकरतेहैं[17] ॥ इति पदार्थ ॥ हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्म ॥

भावार्थमंत्रअठारहवेंका ॥

हे सौम्य ! अब अग्निदेवतासे अमृतत्वप्राप्तिकेअर्थ उसका उपासक प्रार्थनाकरताहै । हे प्रकाशवान् देव ! १ । हे अग्नि ! २ सम्पूर्ण ३। हमारेकर्मोंको ४। जानतेहो ५। ताते हम कर्मविशिष्टों को ६। अर्थात् समाहितचित्तसे निरन्तर निष्काम विहितकर्मकरनेवाले हमकर्मीलोग तिनको । कर्मफलभोगनेके अर्थ ७। शोभनमार्ग करके ८। प्राप्तकरो ९। अर्थात् दक्षिणमार्गवर्जित उत्तरायणमार्गसे प्राप्तकरो । अरु हमारे १०। कुटिलवचनात्मक ११। पापोंको १२। अर्थात् विहितकर्मकरतसंते अज्ञानवश असत्य किंवा व्यंगवचन जो कथन भयाहोय तो तज्जन्यपापों को । विनाशकरो १३। कि जिसकरके हम अत्यन्त पवित्रहोयँ अपनेइष्ट अमृतत्वको प्राप्तहोवें एतदर्थ इस शरीरावसानकालमें अशक्यताकरके हवनादि परिचर्यामें असमर्थ जे हम सो तुम्हारे अर्थ १४। बहुतसे १५। नमस्कारवचन १६। विधानकरते परिचर्याकरते हैं ॥ १७ । १८ ॥
इति ईशावास्यउपनिषद्का भाषाटीकाभावार्थ सम्पूर्ण ॥

तात्पर्य ॥

"कुर्वन्नेवेहकर्माणि" इत्यादि । इस द्वितीयमंत्रकरके आत्मअध्यासमें असमर्थ मध्यमअधिकारीको निष्काम विहित अग्निहोत्रादि कर्म कर्त्तव्यकहा क्यों जो उस मध्यमाधिकारीको अमृतत्वप्राप्तिकासाधन कर्मउपासनाही है तहां । विहितकर्मकरतसंते अकरणप्रत्यवायजन्य पापरूपी मृत्युसोंतरके सूर्यादिदेवता किंवा त्रिमात्रिकप्रणव की वेदवाक्यानुसार उपासनाकरताहैं सो उपासकतिसउपासनारूपीविद्याकरके अमृतत्वको जिसप्रकारप्राप्तहोताहै सो १५ वें मंत्र से इस १८ वें मंत्र पर्यन्त निरूपण किया तहां इस १८ वें मंत्र से मध्यमाधिकारी अग्नि की विद्याद्वारा अहं अग्नि उपासना करतेहैं सो अन्तसमय अग्निकी प्रार्थनाकर शुद्ध

उत्तरायण देवयान मार्गद्वारा सत्यलोक को अथवा शुद्ध समष्टि अग्निभावको प्राप्त होते हैं। सोई अग्निकी विद्या करके अमृतत्व प्राप्ति है। याते वेदवाक्यानुसार ज्ञातपूर्वक उपासना करनेवाले जे अग्निके उपासकहैं सो " न स पुनरावर्त्तते "। जन्म मरणरूप संसारमें पुनः आवते नहीं। अर्थात् वह उपासक अपने उपास्य देव साथ अभेद हुआ अमर अर्थात् देवत्वभाव को प्राप्त होय अन्यों करके उपासना करने योग्य होता है ॥ इति तात्पर्यार्थ समाप्तं शुभम् ॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति ईशावास्योपनिषद् भाषाटीकासहिता समाप्ता ॥

शुभम् ॥

॥ ॐ ॥

॥ ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

॥ ॐ ॥

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदुच्यते ॥ पूर्णस्यपूर्ण मादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ओम् ॥

॥ ॐ ॥

॥ सूचीपत्रम् ॥

॥ १ ॥ प्रथम मूलमन्त्र तिसके ऊपर पदच्छेद की रेखा ॥
अरु अन्वयाङ्क ॥

॥ २ ॥ मूल के नीचे अन्वयके क्रम से मूलमन्त्रके पद ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

॥ ३ ॥ अन्वय पदके नीचे तदनुसार भाषा में पदार्थ ॥

॥ चिह्नसूचना ॥

[ ] इस चिह्नान्तरमें शेष विशेष के पद ॥

" " इस चिह्नान्तर में अन्य श्रुतियों के प्रमाण ॥

॥ विनय ॥

इस भाषाऽनुवाद में जो कुछ लेख अरु यन्त्रादि दोष होयँ तिनको सर्वपाठक जन क्षमाकरें ॥

मुंशीनवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ाने लखनऊ में छपी
जौलाई सन् १९०५ ई० ॥

इश्तिहार ॥

केनोपनिषद् भाषा टीकासहित, क़ीमत =)

सामवेदीय तलवकार शाखीय भाषाटीका सरल मध्यदेशीय हिन्दी भाषा में है जिस को पण्डित यमुनाशङ्कर ने राजशास्त्री मिहिरचन्दकी सहायता से अनुवाद किया इसमें भी पदोंके अन्वयपूर्वक भावार्थ स्पष्ट कियाहै और ऐसा टीका किया है कि अल्पज्ञ मनुष्यों के भी समझ में आजावे ॥

प्रश्नोपनिषद् भाषाटीकासहित, क़ीमत ≡)

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागरब्राह्मणकी भाषाटीकासहित–इसमें भी सब ऊपर के लिखे हुये अलङ्कार हैं शिष्यके पूंछेहुये अच्छे प्रश्नोंका उत्तर गुरुने बताकर ब्रह्म-रूप लखाया है ॥

मण्डूक्योपनिषद् भाषाटीका सहित, क़ीमत ॥=)

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागरब्राह्मण की भाषा टीका सहित–जिसमें ओंकार स्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्म और आत्माकी अभेदताका निरूपण चार प्रकरणों में अच्छीतरहसे कियाहै ॥

कठवल्लीउपनिषद् भाषाटीका सहित, क़ीमत ≡)॥

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मण की भाषा टीका सहित–इसमें भी ऊपर लिखे हुये के अनुसार भावार्थ स्पष्ट कियागया और समझने की सुगमताके लिये गुरुशिष्यसंवादपूर्वक पूर्ण ज्ञान लखाया है ॥

मुण्डकउपनिषद् भाषाटीका सहित, क़ीमत =)।

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मण की भाषाटीका सहित–जिसमें वादी प्रति-वादी के प्रश्नोत्तरसे ब्रह्मका निर्णय व जगदुत्पत्ति व प्रत्येक अन्नादिका सम्भव व अग्निहोत्रादि क्रियाओंका विधान मन्त्रों द्वारा वर्णित है ॥

तैत्तिरीयोपनिषद् भाषाटीका सहित क़ीमत ।–)।

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मणकी भाषा टीका सहित–जिसमें तैत्तिरीय शाखा के प्रकट होनेका उदाहरण और स्वरमात्रा व वर्णोंके उच्चारणकी शिक्षाका नियम व वर्णों के सम्बन्धरूप संहिताकी उपासना व बुद्धि व लक्ष्मीकी काम-ना वाले पुरुषोंकेअर्थ साधन जप और हवनादि की क्रियायें वर्णित हैं ॥

ऐतरेयोपनिषद् भाषा टीका सहित, क़ीमत=)॥।

पञ्चोली यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मण की भाषाटीका सहित–जिसमें आत्मा व ब्रह्मका निरूपण और प्राण व प्रणवकी उपासनाकी व्याख्या व संन्यासादि आश्रमों के लक्षण व धर्म अच्छे प्रकार से वर्णित हैं ॥